मंत्र-विद्ध

(उपन्यास)

राजेन्द्र यादव

अक्षर

संयुक्ता को

अपना बिन्दु...

जयन्त साँप नहीं था, इन्द्र का बेटा था। साँप था तक्षक...इस कहानी का नाम दोनों में से किसी के नाम पर रखा जा सकता था। हालांकि दोनों में से कोई भी संकेत कहानी के लिए ना-काफ़ी और ग़ैर-मौज़ूँ है। *इस तरह के संकेत हमेशा एक अवांछनीय पूर्वग्रह छोड़ जाते हैं।*

इस कहानी और पिछली लम्बी कहानी 'अनदेखे अनजान पुल' के बीच चार वर्षों का अन्तराल है। इस बीच 'नई कहानी' को लेकर जाने कितने सम्मेलन, बहस-मुबाहिसे और अपने आपको खोजने-टटोलने और जाँचने-परखने के क्षण हैं। उन सबका एक भाग भी रहा हूँ और शिकार भी। अवरोध से अधिक यह मेरे लिए अपने को तोलने का समय है।

मुझे नहीं पता, अ-उपन्यास या अ-कहानी क्या होती है। लेकिन न जाने कितनी कथा-रूढ़ियों से लड़ते हुए मैंने इसे लिखा है। घटित और घटनीय के बीच का तनाव क्षण कहानी का कथ्य है, इसलिए घटना या घटनात्मक विविधता और संयोगों की विचित्रता जुटाकर दिलचस्प कहानी बनाने की तरफ मेरा ध्यान नहीं गया, शायद कभी नहीं रहा। एक विशेष स्थिति—सिचुएशन—को ही लिया गया है, उसके रेशों और गति को एक साथ समझने के लिए। इस कहानी को लिखने के दौरान मैं उद्विग्न मनःस्थितियों से गुजरा हूँ—विशेष रूप से टामस मान की कहानियों में उठायी गयी लेखन, लेखकीय व्यक्तित्व और जीवन के सम्बन्धों की समस्याओं के कारण...

एक कहानी-भाषा की तलाश मेरा दूसरा चिन्ता-केन्द्र रहा है। अपने को उन 'विशेषज्ञों' के बीच पाने का अभिशाप हम सब ढो रहे हैं जो भाषा की 'दरबारी-नक्क़ाशी' से ऊपर नहीं उठ पाते, जिनके साहित्य-संस्कार छायावाद युग के हैं। आज भी वही खुमारी (हैंग-ओवर) उनकी निगाह धुँधलाये हुए है। जड़ाऊ शब्दोंवाली, पंत-प्रसाद-महादेवी की तरल भाषा में पगी शरच्चंद्रीय कहानियाँ उनके भाव-बोध को अधिक छूती हैं...

विशेषण-हीन यथार्थ और बेलौस (रोबस्ट) भाषा को स्वीकार करने के लिए शायद रोमन मूर्तियोंवाले भाव-बोध की आवश्यकता है···हो सकता है, बहुतों को वे नंगी और सपाट लगें···

एक बात और···विशेष परिवेश में कुछ स्थितियाँ और उनसे गुजरने-वाले बार-बार हमारे सामने आते हैं, सतही धरातल पर उनमें समता और समानता भी लगती है। शायद यह एक ही समय की जिन्दगी के समान पैटर्न के कारण हो। इस तरह की समानता का आरोप बहुत घातक और भ्रामक है। मेरी अनेक कहानियों में कहीं-न-कहीं कुछ लोगों ने अपने जीवन या स्थितियों को पाया है। लेकिन एक बिन्दु पर तादात्म्य करने के बाद जब भी कहीं कुछ अलग या अस्वीकार्य आया है, वे विक्षुब्ध हो उठे हैं। उसमें उन्होंने लेखकीय कुंठा और अपने पर लांछन दोनों को खोज निकाला है। कथा-लेखन, जीवनी और घटना की रिपोर्टिंग से अलग है। जिस 'वास्तविकता' से हम साग्रह चिपके रहना चाहते हैं, कथा की माँग उससे हटने को मजबूर कर देती है। इसके लिए लेखक का लम्बा और सामूहिक अनुभव एक कोश की तरह काम आता है, इसलिए किसी कहानी में पहले तादात्म्य देखना और फिर शिकायतें या संतुष्टि घोषित करना, लेखक से अतिरिक्त चाहना है।

इस कहानी का वास्तविक ढांचा मुझे '६० के आस-पास कलकत्ते में मिला था। बाद में तो उसी अनुभव को लिख सकने की प्रेरणा ही मिलती रही है।

लेखकीय मंतव्य और मानापमान से हट कर कहानी को इसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए···

राजेन्द्र यादव

नई दिल्ली

नथुनों की उस तरह की बनावट और उनके फड़कने को देखकर अक्सर लोगों को कछुए का ध्यान आता है; मुझे जाने क्यों साँप का ध्यान आया। माइनस के छल्लेदार काँचों पर खिड़की की जालियाँ तो साफ़ थीं; लेकिन यह तय करना मेरे लिए मुश्किल था कि रोशनी की झलक भीतर से कौंधती है या बाहर की परछाईं के कारण ऐसा लगता है। बार-बार सरक आते चश्मे को नाक की जड़ पर तारक कुछ ऐसे अन्दाज़ से एक उँगली से छूता था जैसे कुछ लोग रौब में आकर सलाम करते हैं। मैंने सोचा, सड़क पर उसके इस तरीके से चश्मा ठीक करने को लोग ज़रूर सलाम करने के अर्थ में लेकर ठिठक जाते होंगे। बहुत लोगों को इस बात का क्या बिल्कुल खयाल नहीं होता कि उनके चश्मे के गंदे काँच सामने वाले को कितना बेचैन कर देते हैं और रह-रहकर रूमाल से उन शीशों को पोंछ देने की इच्छा दबाये वह कैसे बातों में व्यस्त रहने की कोशिश करता रहता है।

इस बेचैनी के बावजूद मैं अपने को खुश बनाये हुए था।

खाने की मेज पर तारक बैठा था और साथ बैठी थी उसकी नव-विवाहिता पत्नी सुरजीतकौर। प्यालों की चाय जाने कब की समाप्त हो चुकी थी, लेकिन हम लोग बातें किये जा रहे थे। प्यालों के तले में बचा पत्तियोंवाला मटमैला पानी जाने क्यों मन में हमेशा एक घिनौनी-सी बेचैनी पैदा करता रहता है, मन होता है या तो मुझे उठ जाना चाहिए या ये उठा लिये जाने चाहिए'''मगर अब प्याले ऐश-ट्रे का भी काम दे रहे थे। वे हटा

लिये जाते तो हम लोग फ़र्श और मेज गंदी करते···राखीले पानी में सिगरेट के टोंटे फूलकर बेडौल हो गये थे और मुझे रह-रहकर भरे कमोड का ध्यान हो आता था और मैं सुरजीत के खूबसूरत चेहरे को देखते हुए अपनी निगाहें प्यालों पर जाने से रोके रखता था।

कलकत्ता आने से पहले मैंने तारक से बँगला पढ़ी थी, केवल दस दिन। बात महीने-भर पढ़ने की हुई थी; लेकिन शीघ्र ही हम लोग दोस्त बन गये और पढ़ने के अलावा हर चीज़ पर बातें करने लगे। शायद उन दिनों वह सुरजीत की ही बात किया करता। नाम तो उसने नहीं बताया था, लेकिन उसका किसी सरदार की लड़की से 'अफ़ेयर' चल रहा है, यह उसने ज़रूर कहा था। शायद आरम्भ की अवस्था थी, क्योंकि वह बहुत खोया-खोया रहता था और अक्सर सरदार लोगों की मेहनत करने की क्षमता, खुले दिल और खिलते सौन्दर्य की चर्चा करके मेरा समर्थन बटोरा करता था। मैंने जब कलकत्ता आने की बात तय की तो सोचा, वहाँ जाने से पहले कम-से-कम बँगला तो मुझे थोड़ी-सी सीख ही लेनी चाहिए। मैंने होटल वाले से पूछा कि क्या वह किसी बंगाली को जानता है? होटल वाला मेरा दोस्त हो गया था, उसने बताया कि एक बंगाली प्रोफ़ेसर कभी-कभी वहाँ खाना खाने आते हैं। फिर दो-तीन दिनों बाद जिस व्यक्ति से उसने 'प्रोफ़ेसर', कहकर मेरा परिचय कराया उसे मैं उसी होटल में कई बार देख चुका था —पीछे से सीधी-सपाट खोपड़ी, छल्ले झलकाते माइनस नम्बर के सफ़ेद काँचोंवाला चश्मा, जिसे वह बार-बार एक उँगली से पीछे धकेलता था। इस शक्ल से ज़रूर उसके बंगाली होने का कहीं आभास होता था, वरना बात-चीत में वह क़तई बंगाली नहीं था और सारी जिन्दगी उसने मथुरा में ही बितायी थी। बातों से पता चला कि 'प्रोफ़ेसर' साहब करौल बाग की ही एक प्राइवेट टीचिंग-शॉप में अंग्रेजी और इतिहास दोनों पढ़ाते हैं और दो-ढाई सौ का हिसाब बैठा लेते हैं। कभी-कभी उस ढाबे में खाना खाने चले आते हैं। मुझे याद है, उन दिनों भी उसने बताया था कि जिस लड़की से उसे प्यार है उसका बाप निहायत ही खूँखार और उजड्ड सरदार है। अगर उसे हवा भी लग गयी तो कृपाण से अन्तड़ियाँ खींच लेगा···तारकनाथ दत्त भले ही तीन पीढ़ियों से उत्तर-प्रदेश में रहता रहा हो, और उसे माँछ-भात

की अपेक्षा सब्जी-फुलका ज्यादा अच्छा लगता हो, मगर सरदार तो सरदार ही है···उसका क्या भरोसा ? उस समय की उसकी बातों में मुझे कतई विश्वास नहीं था कि एक दिन सुरजीत को उसकी पत्नी के रूप में देखूँगा। कुछ दिनों के शग़ल के रूप में ही मैंने इसे तब लिया था।

"याद है तुम्हें तारक" मैंने अचानक याद करके कहा, "हम लोगों ने तय किया था कि बंकिम-ग्रंथावली से शुरू करेंगे। 'राजसिंह' से पढ़ाई शुरू हुई थी।" अब मैंने सुरजीत को पुराने दिनों की बातें बतायीं; "लेकिन राजसिंह के एक पन्ने से आगे पढ़ाई चली ही नहीं। एक तो तब मुझे पता चला कि तारक बंगाली भले ही हों, बंगला हम दोनों के लिए समान रूप से विदेशी भाषा है।"

तारक मुँह से सिगरेट निकालकर मुस्कराया, स्वीकृति में सिर हिलाकर, "यहाँ आकर तो रहा-सहा भ्रम भी टूट गया। वहाँ हम लोग अपने को बंगाली मानकर खुश होते रहते थे और कहते थे कि अपना देश तो कोलिकाता है; यहाँ हमें कोई बंगाली ही नहीं मानता। बात करो तो लोग हमारी बोली पर हँसते हैं। खाना हमें बिल्कुल अच्छा नहीं लगता इनका, पता नहीं कैसा-कैसा स्वाद होता है। हर चीज में सरसों का तेल। हम लोग तो अक्सर पंजाबी होटल में ही जाकर खाना खाते हैं।"

मैं उन दिनों में खोया, हँसता रहा, "मैं इन्हें बंगाली गुरु मानकर तारकदा कहता और ये मुझे अपने से बड़ा समझकर मोहनदा कहते··· लेकिन उन दिनों तो इनका मन ही नहीं लगता था, बेहद अनमने और उदास रहा करते थे। हमेशा ऐसा लगता जैसे कहीं जाना है।"

तारक ने सामने की डिब्बी से दूसरी सिगरेट निकालकर पहली बची हुई से उसे जलाया, फिर जली हुई सिगरेट को धीरे-धीरे कप के पानी से छुलाते हुए छन-छन की पृष्ठभूमि में कहा, "मन कहाँ से लगता ? उन दिनों हमारे मन में ये भरी हुई थीं। नयी-नयी घनिष्ठता हुई थी सो सबकी आँख बचाकर पीछे से इन्हें बस-स्टैण्ड पर आकर मिलना पड़ता था, कॉपियों में चिट्ठियाँ देनी और लेनी पड़ती थीं। डब्ल्यू०ई०ए० और नाईवालों की पतली-पतली गलियों में मकानों के सहारे छाँह में खड़े होकर बातें करते-करते सैकण्ड-सैकण्ड पर इधर-उधर देखना पड़ता था कि कहीं

सरदारजी न चले आ रहे हों। सो उन दिनों दिमाग़ एकदम सही नहीं था।"

"झूठ !" इस बार सुरजीत ने प्रतिवाद किया। वह चम्मच से यों ही प्याले को बार-बार छू रही थी, "आज तो अपनी सारी आगे-पीछे की ग़लतियाँ मेरे ही सर मढ़ोगे···"

"मढ़ोगे ?" तारक मेरी ओर शिक़ायत से देखकर बोला, "हम सच कहते हैं मोहनदा, पिछले दिनों जाने कौन-सा मंत्र फूँक दिया था कि हमें लगता ही नहीं था जैसे हम इस दुनिया में रहते हों। जैसे सोते में आदमी खाता चलता है, वही कुछ हालत हमारी हो गयी थी। न उस कॉलेज में मन लगे न घर पर। किसी से बात करो तो समझ में ही न आये कि क्या बात की जाये। खाना-सोना सब गोल हो गया था! एक बार ये गर्मियों-भर नहीं मिलीं, पता नहीं अपने अब्बाजान के साथ कहाँ शिमला-मसूरी चली गयीं। अब आप विश्वास कीजिए मोहनदा, हम तो एकदम पागल ही हो गये। अपने-आपको समझाते, गालियाँ देते कि यह कैसा प्यार है। दो महीने बाद किसी तरह मिलीं तो कहती हैं कि डैडी ने जलंधर के किसी कॉलेज में नाम लिखा दिया है, यहाँ नहीं रखेंगे। हम लोगों को लेकर किसी ने उनसे कुछ कह दिया है। ये समझिए कि हमारी तो किसी ने बस जान ही निकाल ली। इसके बाद तीन दिनों को फिर ग़ायब हो गयीं। फिर मिलीं तो बहुत बीमार और उदास। बोलीं, 'डैडी ने बहुत मारा, बहुत मारा। दो दिन तो बिना खाना-पीना दिये कमरे में बन्द रखा। बड़ी मुश्किल से भागकर आयी हूँ और अब वहाँ बिल्कुल भी नहीं जाऊँगी।' हमने भी कह दिया—'एकदम मत जाओ।' बस मोहनदा, ये जैसी आयी थीं, वैसे ही हम लोग आर्यसमाज गये, होटल वाले से मैंने तब आपका भी पता पूछा था तो उसने बताया कि वो तो कलकत्ता हैं। बस, उसके दो दिनों बाद हम लोग भी कलकत्ते की गाड़ी में बैठे थे···आप यों समझो कि हम तो ऐसे सारा कुछ कर रहे थे जैसे मंत्र से बँधा हुआ आदमी काम करता है। ट्रेन में जब मुग़लसराय निकल गया तो होश आया, ये हमने क्या कर डाला है···।"

सिर झुकाये सुरजीत जैसे भीतर की ख़ुशी को जबर्दस्ती रोके रखकर

गंभीर बने रहने की कोशिश कर रही थी। तारक का अपने-आपको इस प्रकार उसके लिए समर्पित कर देना, ख़तरे में डाल देना शायद कहीं उसे बहुत अच्छा लग रहा था। अन्दर के कमरे से इन्दु कपड़े बदलकर निकल आयी थी और तारक की बात खत्म होने का इन्तज़ार कर रही थी। अब हँसकर बोली, "चलो, अच्छा हुआ। अभी तक यही मशहूर था कि बंगाल की औरतें जादू से मेढ़ा बना देती हैं, पंजाब की कुड़ियाँ भी मंत्र जानती हैं, यह भी तो पता चल गया।"

बच्चों की तरह इठलाकर, नकियाए स्वर में सुरजीत ने विरोध के ढंग पर कहा, "नहीं भाभी, बिल्कुल झूठ बात है। जादू मैंने इन पर किया था या इन्होंने मुझ पर? आप ही बताइए, माँ-बाप की इकलौती लड़की, डैडी इतना प्यार करते हैं कि बस पूछो नहीं, एक तरह घर-भर की मालकिन···सब छोड़-छाड़कर इनके साथ यों ही चली आयी। उन्होंने तो मेरे लिए एक मेजर से बात पक्की कर ली थी। बोलो, उनकी इज़्ज़त, धन-दौलत, प्यार सभी कुछ छोड़कर मैं ही तो आयी न, इनका क्या गया...?" और धीरे-धीरे सुरजीत सुबकने लगी।

इन्दु ने उसे अपने से सटा लिया और प्यार से कनपटी थप-थपाकर कहा: "नहीं री, ऐसी भी क्या बात है? माँ-बाप कोई हमेशा नाराज़ रहते हैं? साल-छः महीने में कुछ बनकर उनके पास लौटोगे तो उनका सारा ग़ुस्सा दूर हो जायेगा। और यों ग़ुस्सा और नाराजगी तो चलती ही रहती है। कौन बाप होगा जिसे ग़ुस्सा नहीं आयेगा? घर-भर की अकेली लड़की, उन्होंने भी तो तुम्हारी शादी के बड़े-बड़े सपने पाल रखे होंगे..."

मुझे इन्दु का यों प्यार से सुरजीत को समझाना अच्छा लगा। उसके रोने से तारक अपराधी की तरह सहम गया था, सिगरेट की राख झाड़ता कप की ओर देखे जा रहा था, कभी-कभी उधर देख लेता था। उसने आधी सिगरेट कप में डालकर बुझा दी और डिब्बी से दूसरी निकालकर बहुत ही व्यस्त भाव से जलाने लगा। एक बार चश्मा नाक के ऊपर सरकाया।

"डैडी ने पचास हज़ार मेरी शादी के नाम के निकालकर अलग रख दिये थे। मम्मी ने जाने कितना ज़ेवर-कपड़ा तैयार कराया था जिसे डैडी किसी को छूने नहीं देते थे। रोज़ भाभी को सुनाकर कहा करते, 'सुरजीत

की शादी ऐसी करूँगा कि सारे रिश्तेदार, गली-मुहल्ले वाले देखते रह जायेंगे', भाभी को यह सब सुनकर अच्छा थोड़े ही लगता था। मेरे यों चले आने से भाभी तो सच पूछो मन-ही-मन बड़ी खुशी हुई होंगी··· लेकिन डैडी को कैसा लगा होगा यह भी तो सोचो···" बड़ी-बड़ी गुलाबी आँखों में आँसू भरे आरोपती निगाहों से उसने तारक को देखा, "मम्मी होतीं तो चलो एक बात भी थी, आपस में ही एक-दूसरे का दुख बाँट लेते ? अब डैडी किसी से कुछ कह भी तो नहीं सकते मन की बात; इसलिए सारे दिन झल्लाते ही घूमते होंगे। भाई जर्मनी में है, भाभी से वे इतना बोलते नहीं···" वह कह रही थी।

शायद तारक को लगा कि गलत स्थिति में घिर गया है और बचाव जरूरी है। भड़क कर बोला, "ऐसा ही था तो नहीं आतीं भाई···तुम्हें उनका इतना ख़याल आ रहा है तो वहीं रहतीं उनकी गोद में, और मेजर-कर्नल जिससे शादी करते, कर लेतीं। पचास हज़ार डैडी ने रक्खा ही है, बीस-पच्चीस का जेवर-कपड़ा मम्मी भी रख गयी होंगी। हमारे पास क्या है ? अभी तो नौकरी भी नहीं है; दूसरे की गद्दी में शरणार्थियों की तरह पड़े हैं। लेकिन ये सारी बातें तो पहले सोचने की थीं। तब तो तुम्हीं ने जिद की थी कि मुझे यहाँ से निकाल ले चलो···अब मैं कभी उस घर नहीं जाऊँगी।" अन्त तक तारक की बात में कड़ुवाहट आ गयी थी।

"हाँ, तो मुझे उस बात का कोई ग़म थोड़े ही है। मैं तो एक बात कह रही थी। मैं तो सारी बात सोच-समझकर ही आयी हूँ, बच्ची नहीं हूँ।" सुरजीत ने भी तेज़ स्वर में जवाब दिया।

हम लोगों को अचानक लगा, जैसे नाटक के फ़ालतू दर्शक की तरह अलग खड़े हैं। स्थिति समझने के लिए पहले तो सुनते रहे, उस क्षण उसके नथुने, गंदे काँच ही दीखते रहे। फिर लगा कि इस समय हममें से किसी का बोलना बहुत ही जरूरी है। मैंने समझाया, "छोड़ो यार, जो हो गया उसे लेकर इतना परेशान होने की अब क्या जरूरत है ? तुम लोगों ने कुछ अनोखा तो किया नहीं है। रोज़ होता है, हज़ारों सालों से होता आ रहा है। अब तो ये बताओ कि आगे करना क्या है ?"

तारक भी जैसे सचेत हो गया, "मोहनदा, इसी बारे में तो आपसे कुछ

सलाह लेनी थी।"

इन्दु सुरजीत से कह रही थी, "चलो हम लोग उधर चलते हैं। मुझे अब कॉलेज भी जाना होगा। तुम्हें जाने की जल्दी तो नहीं है न ?" सुर-जीत के सिर हिलाने पर बोली, "ठीक है, मैं दो-ढाई घण्टे में लौट आऊँगी। साथ ही खाना खायेंगे। शान तो इसमें है कि जिस तरह तुम आये हो, उसी ठसक से रहो। माँ-बाप के दिल को मैं जानती हूँ। साल-छः महीने नाराज़ रहेंगे, फिर अपने-आप ठीक हो जायेंगे। आओ उठो, आराम कर लो जरा उधर चलके—" वह उसके कन्धे पर हाथ रखकर उठाने लगी। गुलाबी बनारसी साड़ी की सरसराहट में सुरजीत नव-वधू ही लग रही थी।

तारक ने उठते हुए डिब्बी से फिर नयी सिगरेट निकालकर पुरानी से उसे जला दिया, अब केवल एक सिगरेट बची थी। खयाल आया, उन दिनों भी तारक एक से दूसरी सिगरेट जलाया करता था। अपनी डिब्बी मैंने उसके पास शायद ही कभी देखी हो। तब भी आश्चर्य हुआ करता था कि इस तरह का चेन-स्मोकर अपनी सिगरेट के बिना कैसे काम चलाता होगा। अगले हमले से बचने के लिए बिना आवश्यकता के भी मैंने बची हुई सिगरेट अपने लिए निकालकर जलायी। हम लोग बैठक में आ गये। "आओ, यहाँ बैठकर सोचते हैं कि अब आगे क्या किया जा सकता है।" मेज से उठते समय सुरजीत सारे प्लेट-प्याले उठाकर रसोई में ले जा रही थी। भीतर से इन्दु की आवाज आयी, "रहने दो, नौकर उठा लेगा न···।" बिना कोई जवाब दिये वह उन्हें भीतर सिंक में जाकर धोने लगी थी।

बैठक में आये तो बाहर सड़क की ओर खुलते दरवाज़े को देखकर तारक बोला : "मोहनदा, टैक्सी को फिर छोड़ ही दें न, यहाँ तो समय लगेगा···।"

"क्या ? टैक्सी अभी तक खड़ी है ? कमाल है यार, डेढ़ घण्टे से उसे क्यों खड़ा किये हो ? जाओ, जाओ, उसे विदा करो पहले। यहाँ से तो खाना-वाना खाकर जाना।" मैंने उसे झिड़क दिया, "यह क्या फ़िजूल खर्ची है ? अब जब तक कुछ ठीक नहीं हो जाता, जरा सोच-समझकर चलो···।"

मैं बालकनी में निकल आया और तारक नीचे सीढ़ी उतरकर सड़क पर

गया। बनर्जी बाबू नंगे बदन कुर्सी पर बैठे अख़बार पढ़ रहे थे, उनकी मोटी लड़की तोते को मिर्च खिला रही थी। सरावगी का नौकर सड़क पर खड़ी फ़ियेट धो रहा था, घटक की बाल्कनी से झालरों की तरह रंग-बिरंगी साड़ियाँ लटक रही थीं। हिप्-पॉकेट से पर्स निकालकर लापरवाही से तारक टैक्सी का मीटर देखते हुए दस का नोट बढ़ाये खड़ा था। टैक्सी वाले ने एक का नोट और कुछ पैसे लौटाये। मैं अन्दर आ गया। इन्दु की आवाज़ सुनायी दे रही थी, "तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत हो नौकर से माँग लेना। चाय-वाय पी लेना। नहाना चाहो तो उधर गुसलख़ाना है।"

"हाँ भाभी, नहाऊँगी ज़रूर। वहाँ गद्दी में नहाने का इन्तज़ाम नहीं है। दो-तीन दिन हो गये।" सुरजीत की आवाज़ अब काफ़ी स्वाभाविक थी।

"हाँ, हाँ, जो तुम्हारा मन हो, अपना घर समझकर ही करो।" इन्दु पर्स-रजिस्टर लिये ही रसोई पर खड़ी-खड़ी बादल को आदेश दे रही थी। अभी उतरकर कॉलिज जायेगी। मैं लंच के बाद दफ़्तर जाऊँगा, मैंने सोचा। हम लोग अचानक ही जैसे सचमुच इन दोनों के बड़े भाई-भाभी बन गये थे। यह तारक ने कई बार बताया था कि उनका कलकत्ते में मुश्किल से एकाध ही कोई परिचित होगा, रिश्तेदार हों भी तो उनके पास वह जाना नहीं चाहेगा। कुछ-न-कुछ इनके लिये करना ही है। बड़ी देर लगा दी टैक्सी के पैसे देने में, कहाँ रुक गया।

सीढ़ी पर चढ़ती जूतों की आवाज़ के साथ ही बैठक का दरवाज़ा खोलकर तारक भीतर आ गया, हाथ में बीस सिगरेट वाला पैकेट और दो पान थे। "मैंने सोचा, पान-सिगरेट भी लेता ही चलूँ।" वह सन्तोष से पान चबा रहा था, जिस तरह लोग शराब पीने के बाद चबाते हैं। सांस के साथ इलायची की गन्ध बाहर फैल जाती थी। दोनों हाथों में अदब से पान पकड़कर एक मेरी ओर बढ़ाया, "भाभी तो शायद कॉलिज गयी हैं न, मुझे बाहर मिली थीं। पान दिया तो बोलीं, पान खाकर क्लास में जाना अच्छा नहीं लगेगा।" फिर भीतर की तरफ मुँह करके पुकारा, "भई, ये पान लेना ज़रा।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये अन्दर चला गया। आपसी आक्षेपों और आरोपों के बावजूद वे लोग जिस तरह एक-दूसरे को

देख-देखकर मुस्करा और झेंप रहे थे, इससे मुझे लगा कि तारक ने अन्दर कमरे में जाकर सुरजीत को मनाने के लिए अपने हाथ से पान खिलाया होगा, हो सकता है, चुम्बन भी लिया हो, क्योंकि चूड़ियों के कुछ इसी तरह खनकने की आवाज़ आयी थी। ये लोग सच ही एक-दूसरे को काफ़ी प्यार करते हैं, अगर इस तरह भाग भी आये तो क्या बुरा कर दिया ?

और थोड़ी देर बाद जब तारक बैठक में आया तो लगा, ज़बर्दस्ती स्वाभाविक बनाने की कोशिश कर रहा है। होंठों के कोनों को बार-बार उँगलियों से पोंछ लेता या चश्मा पीछे ठेल देता था। उसके खुले रंग पर पान खिलकर रचा था।

"हूँ···" मैंने अख़बार एक तरफ़ समेट दिया, "अब बोलो, क्या करने का इरादा है ?"

वह आराम से कुर्सी पर आ बैठा। एक-एक टाँग हाथों से उठाकर ऊपर रक्खीं, आलथी-पालथी की तरह, "बात यह है मोहनदा, इरादा तो अब बनाना है। अभी तक तो वहाँ से निकल भागने की ही समस्या थी, अब नौकरी तलाश करनी है, सिर के ऊपर छत हो तो मन को ज़रा चैन आये, सो सबसे पहले तो कुछ रहने-सहने का डौल बैठाना है। जैसे आज-कल है, वैसे कब तक मारे-मारे फिरेंगे ? मेरे साथ स्कूल में मथुरा का ही एक लड़का पढ़ता था, गोयल। उसके कोई जीजा या साले यहाँ जूट और हैसियन का काम करते हैं, सो वह भी उन्हीं के दफ़्तर में आ लगा है। अभी तो एक तरह उसी के साथ हूँ। कमरा तो उसके पास एक ही है कहीं मछुआ बाजार में, चौथे तल्ले पर। लेकिन उसने चीतपुर रोड पर एक गद्दी में हम लोगों का इन्तजाम कर दिया है। गद्दी भी क्या, एक कमरा है, सो उसमें हमसे पहले एक नौकर सोता था। अब वह बाहर दूसरे कमरे में सोने लगा है। उस बिल्डिंग में ऐसी-ऐसी पचासों गद्दियाँ हैं, रात में उन सबमें यही नौकर-दरबान, मुनीम किस्म के लोग सोते हैं। रात को उनके यार-दोस्त भी आ जाते हैं, सो कोई रोटी बनाता है, कोई कपड़े धोता है, कोई भाँग घोटता है और फिर वे लोग बैठकर बीड़ियाँ-सिगरेट फूँकते हैं, ताश-चौपड़ खेलते हैं। दुनिया-भर की अच्छी-बुरी बातें कहते, लड़ते-गाते रहते हैं, गालियाँ और गंदी-गंदी बातें बकते हैं। मेरा तो कुछ नहीं

है, सुरजीत का वहाँ रहना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता। हमें लेकर भी आपस में कुछ-न-कुछ कहते ही रहते हैं, अपनी तरफ़ का एक भला-सा ड्राइवर है, उसकी वे लोग काफी इज्जत करते हैं, इसलिए जरा लिहाज़ है। लेकिन उस तल्ले पर एक ही कॉमन बाथरूम है, सो वे बेचारी तो वहाँ जाती ही नहीं है, यों ही किसी के यहाँ गये तो नहा-धो लिये। अब तो सबसे पहले रहने-सहने का ही कुछ करना है···।" मैं उसकी बात से चौंक गया। कितने बरसों बाद अपनी तरफ़ का 'डील' शब्द सुना है, लगता था जैसे यह शब्द ही नहीं था।

"तब तो बड़ी तकलीफ़ है। न हो तो कुछ दिनों को यहीं आ जाओ। मैं इन्दु से पूछे लेता हूँ, लेकिन इस समस्या का कुछ-न-कुछ स्थायी प्रबन्ध तो करना ही होगा फ़ौरन।" मैं उसकी परेशानी से बोला। सुरजीत अच्छे घर की लगती है। बेचारी क्या सोचती होगी उस गद्दी में सोते हुए। अगर मैं इन लोगों को अपने यहाँ आने को नहीं कहूँगा तो कहेगी, अच्छे तारक के दोस्त हैं। मैंने विनोद से पूछ लिया, "जिस तरह टैक्सियों पर उड़ा रहे हो उससे तो लगता है कि रुपये-पैसे काफ़ी ले आये हो।"

"कहाँ मोहनदा, कुछ भी इन्तजाम करने का मौका ही कहाँ मिला ? किसी तरह एक दोस्त से पाँच-सौ का जुगाड़ किया था, सो उसमें से भी मुश्किल से सौ-सवा सौ बचे होंगे। यहाँ तीन दिनों में ढाई-सौ खर्च हो गये। ये तो जैसी थीं वैसी ही उठकर आ गयीं। किसी तरह कुछ उधार कुछ नकद पर हार-अँगूठी लीं, दो-चार पहनने की साड़ियाँ खरीदीं, इन सबके हज़ार रुपये तो अब जाकर देने हैं। वहाँ रुकते तो कुछ और भी सोचते-करते, लेकिन वहाँ एक दिन भी रुकना ख़तरनाक था···।"

"क्यों ?" जानते हुए भी मेरे मुँह से निकलता। भीतर कहीं मैं चिन्तित हो आया। कहीं-न-कहीं सारी बात का तोड़ इसी पर होगा कि मुझे दो-ढाई सौ रुपयों का प्रबन्ध करना पड़ेगा। मैं पहले ही इतने कर्ज में हूँ कि अब असंभव हो जायेगा। अगर इन्दु का मिस-कैरेज न हो गया होता तो शायद कोई बात नहीं थी।

"अरे मोहनदा, वो सरदार जिन्दा छोड़ता ? हम दोनों को कत्ल करा के फिंकवा देता। आपको पता नहीं, कितना खूँखार आदमी है। ये

डब्बल तो उस साले का चेहरा है, फिर दाढ़ी और लाल-लाल आँखें, एकदम राक्षस लगता है। अब आप कुछ कहिए, उसके चेहरे की कल्पना से ही हमारी तो साँस रुक जाती है। सच बात है कि सुरजीत ही हिम्मत न करती तो हमारे तो बाप के बूते का काम नहीं था।" वह देर तक मेरे चेहरे को ग़ौर से देखता रहा। "अब वहाँ ऐसा फनफना रहा होगा जैसे मणि-छीना साँप फुंकारता है। पागल हो गया होगा···"

"करता क्या है ?" मैंने मन में कहा : तू भीतर से रहा वही।

"मोटर पार्ट्स की दुकान है; लेकिन महाभयानक आदमी है वह सरदार मोहनदा। अब चुप थोड़े ही बैठा होगा, उसने जरूर दो-चार आदमी यहाँ भी लगा दिये होंगे। कलकत्ते में उसके कुछ-न-कुछ बिज़नैस सम्बन्ध न हों, ऐसा हो नहीं सकता। सो यों समझो कि हम लोगों का तो बाहर निकलना भी ख़तरे से खाली नहीं है। मुझे तो हर सरदार वैसा ही दिखायी देता है। आप विश्वास नहीं करेंगे; लेकिन उसने हम लोगों के वारण्ट तो ज़रूर ही निकलवा दिये होंगे।" इस बार सचमुच उसके चेहरे पर भय उतर आया और छल्लों के पीछे आँखें कुछ ज्यादा फैल आयीं।

"वारण्ट क्यों निकलवा देगा ? तुम दोनों तो बालिग़ हो न ?" मैंने बात बीच में काटी।

"बालिग़ तो हैं, लेकिन आप उसे जानते नहीं हैं। इतनी आसानी से वो पीछा छोड़ने वाला नहीं है, शेर की तरह तो डकार लेता है। जिद्दी इतना कि कुछ कहने की बात नहीं। वो तो कहो कि सुरजीत को बहुत प्यार करता है, इसलिए शायद उसने अभी तक कुछ किया नहीं है। वरना, वरना···तारक बाबू आज आपके सामने बैठे होते ? अजी राम का नाम लो, कहीं पड़े हुए चील-कौवों को भोज दे रहे होते···।"

उसके बातें कहने के ढंग पर उठती हँसी को दबाकर मैंने अतिरिक्त गम्भीरता से कहा, "मान लिया कि वो सब कुछ करा सकता है। लेकिन सुरजीत बीस-इक्कीस से कम तो है ही नहीं, यानी क़ानूनी तौर पर तो तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। यों उसकी इज्जत और लड़की की जिन्दगी का सवाल तो है ही, इसीलिए परेशान तो ज़रूर करेगा—" मुझे तारक का भय बहुत आधार वाला नहीं लग रहा था। उसे साहस बँधाने को

कहा, "और तुम्हें अब उससे लेना-देना क्या है ? अपने यहीं रहो और भूल जाओ बाकी दुनियाँ को। कभी चुपचाप बीच में जाकर अपना सामान ले आओ। दो-चार साल गोता लगा लोगे तो अपने-आप सारी बातें ठीक हो जायेंगी। कानूनन कुछ कर भी सकता होगा, तो नहीं करेगा। उसे अपनी बदनामी का डर भी तो होगा न।"

"बदनामी का ही डर होता तो क्या बात थी मोहनदा, उसके पास अन्धा-धुन्ध तो रुपया है, डिफेन्स कॉलोनी में बड़ी-बड़ी दो कोठियाँ हैं। हमने तो चलते-चलते सुना था; उसने पुलिस में रिपोर्ट कर दी है कि सुरजीत घर से पाँच हज़ार की नकदी और पाँच-सात हज़ार का जेवर लेकर भाग गयी है···।" वह अचानक बात तोड़कर बेवकूफ की तरह मेरी प्रतिक्रिया देखने लगा।

मैं पहले चौंक-सा गया, फिर झटके से बोला, "कोई बाप ऐसा नहीं करेगा। ये सब तुम्हारे दिमाग़ी फ़ितूर हैं···इन्हें निकालो।" फिर सहसा लगा, कहीं बात सच तो नहीं है। जिस फ़राख़-दिली से ये लोग खर्च कर रहे हैं उससे तो यही लगता है। ढ़ाई-तीन सौ की तो सुरजीत ने साड़ी ही पहनी है। मन के बहुत भीतर सन्तोष भी हुआ कि शायद जल्दी ही पैसे माँगने की स्थिति नहीं आयेगी। साथ ही एक डर भी उठा, अगर बात सच हुई और ये लोग यहाँ आकर रहने लगे तो हम लोग भी फँस सकते हैं। फिर भी ऊपरी चुहल से कहा, "अरे उसे तो खुश ही होना चाहिए, लड़की की शादी में पचास हज़ार खर्च करता। अब अगर सुरजीत ले भी आयी है तो पाँच-दस हज़ार में छुट्टी हो गयी···"

वह चश्मा ठेलकर उसी गंभीरता से कहता रहता—"नहीं मोहनदा, आप सारी बात को मज़ाक में बिल्कुल भी मत लीजिए, मामला बेहद संगीन है। वो तो कहो कि उसका लड़का जर्मनी में है, वरना वो अलग तूफ़ान मचाता। यह एकदम तय है कि दो आदमी उसने हम लोगों के पीछे ज़रूर ही यहाँ भेज दिये हैं। इतना तो उसे पता ही होगा कि हम लोग कलकत्ता आये हैं। एक तो बंगाली, फिर ऐसे में लोग भागकर या तो कलकत्ता आते हैं या बम्बई···बंगाली कलकत्ता छोड़कर और कहाँ जायेगा ?"

मैंने सोचा, उस हालत में इसे बम्बई ही जाना चाहिए था।

"यार, तुम किस बात के बंगाली हो ? याद दिला देते हो तो ध्यान भी आ जाता है, वरना ख़याल भी नहीं आता।" यह मैंने झूठ कहा था। उसके चश्मे और डर को देखकर मुझे उसके बंगाली होने का ख़याल अभी-अभी आया था, "डर की कोई भी बात नहीं है, तुम निश्चिन्त होकर यहाँ रहो, जगह और नौकरी तलाश करो। दोनों में से किसी-न-किसी को तो नौकरी मिल ही जायेगी, जिसे पहले मिल जाये वही ले लो। पहले पाँव टिकाने का तो इन्तज़ाम करो, फिर उस बाप को भी समझेंगे।" मैंने फिर परिहास से सारी बात की गंभीरता उड़ाने की कोशिश की, "मैं भी अपने दो-एक दोस्तों से कहूँगा। वैसे सुरजीत वहाँ पढ़ क्या रही थी ?"

"हिस्ट्री में एम० ए० कर रही थी। फ़ाइनल था···" अनमना-सा बोला। फिर बड़ी देर आँखें मिचमिचाते हुए मुझे देखता और जल्दी-जल्दी सिगरेट पीता रहा। दुविधा में चबा-चबाकर बोला, "उस साले ने यह पता लगा लिया है कि मेरी शादी हो चुकी है, तीन बच्चे हैं और मेरी फैमिली बनारस में रह रही है···।"

"अच्छा ऽऽ !" मैंने बड़ी मुश्किल से अपने खुलते मुँह को रोका। पहला ख़याल आया कि तब तो वारण्ट वाली बात भी सच हो सकती है। देर तक उसे देखता रहा, "सच बात है ? तुमने तो कभी नहीं बताया तारक···"

"हमारा उन लोगों से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा। सालों हो गये हम कभी बनारस गये ही नहीं।" वह सपाट लहजे में बोला।

तब पहली बार मुझे लगा कि बात को जिस ग़ैर-संजीदगी से मैं ले रहा था, उतनी वह है नहीं। अचानक ही सुरजीत पर दया आयी, कहाँ फँसी है ! मुँह से निकला, "सुरजीत को पता है ?"

"उससे हमने कुछ भी नहीं छिपाया। राई-रत्ती बात उसे मालूम है कि हमारी शादी हो चुकी है, तीन बच्चे हैं और घर का परिवार काफ़ी बड़ा है इसीलिए वहाँ की जमीन-जायदाद का भी कोई सहारा नहीं है। दिल्ली में प्राईवेट कॉलेज की नौकरी है, सो साले प्रिंसिपल को जब पता चलेगा कि हमने ऐसा किया है, उसी क्षण वह ख़त्म हो जायेगी। मतलबयह

है कि आगे-पीछे कुछ भी नहीं है।" उसने चिन्ता-भाव से कहा, फिर कुछ क्षणों के लिए चुप हो गया। "मोहनदा, सच मानो, उन दिनों तो जैसे हम दोनों को होश ही नहीं था। नशेवाली हालत थी कि जो होगा सो देखा जायेगा। अपनी ये सारी परेशानियाँ हम आज सुरजीत को भी नहीं बता सकते,···वह तो नयी ज़िन्दगी के सपने देख रही है···" फिर बीच में ही चुप होकर व्यस्त-भाव से सिगरेट फूँकने लगा।

लेकिन मैं उसकी बात सुनने की बजाय अब दूसरी बातें सोचने लगा था। हुँह, तो यह बात है। लगा, मेरी सारी दिलचस्पी तारक और उसकी कहानी में झटके के साथ समाप्त हो गयी है। साले ने जानबूझकर लड़की को धोखा दिया होगा। कुछ भी नहीं बताया होगा। अगर बाहर निकल कर ट्रेन में बता भी दिया हो तो उस समय लड़की बेचारी कर भी क्या सकती है? लेकिन पंजाबी लड़कियाँ तो इतनी भावुक नहीं होतीं। वे तो एकदम व्यावहारिक, दुनियादार, मतलबी और ग़ैर-जज़बाती होने के लिए बदनाम हैं। सुरजीत कहीं या तो बहुत ही सीधी है या बेवकूफ़··· उसने इस चुगद-सूरत में देखा क्या है? सरदार ज़रूर वारण्ट निकलवा सकता है, उसे निकलवा देना चाहिए। मैंने अभी-अभी उत्साह में यहाँ आने के लिए कह दिया है, वह बहुत बड़ी ग़लती होगी···हम चोरी में न फँसे, इसमें ज़रूर ही फँस सकते हैं···मैं गंभीर मुँह बनाये सोचता रहा।

"यार तारक, यही सब करना था तो पहले उस शादी का झँझट खत्म कर देते न?" अचानक मुझे ध्यान आया कि ऑफ़िस भी जाना है और मैंने अभी तक शेव भी नहीं की है। भीतर की ओर मुँह करके कहा, "अरे भई, शेव का सामान दे जाना ज़रा···"

"हम तो उसका ही निपटारा पहले करना चाहते थे, लेकिन ये सब कुछ ऐसी जल्दी में हो गया कि साँस लेने का भी समय नहीं मिला।" वह मानो मेरे फ़ैसले के लिए मुझे प्रतीक्षा से देख रहा था। "फिर किसी दोस्त ने समझाया कि जब दस साल से तुम्हारा उन बीवी-बच्चों से कोई सम्बन्ध ही नहीं है वो शादी अपने आप ही समाप्त हो जाती है।"

शायद ऐसा होता हो। पूछा: "बच्चे कितने बड़े-बड़े हैं?"

इस बार वह फिर हिचकिचाया। देर तक सिगरेट जलाने की कोशिश

करता रहा, एक बार माचिस की सींक टूट गयी, उसे झटके से फेंक कर दुबारा जलायी। "सबसे बड़ी बच्ची ग्यारह साल की है, बाकी दो लड़के हैं, छः और तीन के···" वह फ़र्श की तरफ देख रहा था।

"फिर···?" प्रश्न के बाद काफ़ी देर मैं उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा, "तब तुम कैसे साबित करोगे कि तुम्हारे उस बीवी से कोई सम्बन्ध नहीं है?"

उसने सहसा मेरा घुटना छूकर कहा, "मोहनदा, आप विश्वास कीजिए, मेरा उस औरत से कोई सम्बन्ध नहीं है। पहली बच्ची का गुनहगार मैं जरूर हूँ, लेकिन बाकी का, भगवान की क़सम खाकर कहता हूँ, मुझे कुछ भी पता नहीं। मैं दस साल से उधर गया ही नहीं···"

हो-हो-हो? और इस बार मैं बैठा नहीं रह सका। झटके से उठकर खड़े होते हुए बेसाख़्ता हँसने लगा, "तारक दिसिज द लिमिट रीयली, दिसिज द लिमिट··· हद्द कर दी यार तुमने! कोई ऐसी बात कहो जो समझ में आये···" और देर तक मैं सचमुच हँसता रहा, साले ने क्या कहानी बनायी है। इसने मेरे और इन्दु के सामने अपना मामला कच्चा कर लिया, यह तय है। मैं सारी असलियत समझते हुए भी एक बार को उदार हो सकता हूँ, लेकिन वह? वह तो इन्हें एक मिनट नहीं रहने देगी। कल रात को ही हम लोग चार घण्टे लड़ते रहे हैं। विवाह के बाद का मेरा एक प्रेम-प्रसंग हम दोनों के बीच शाश्वत तनाव का कारण रहा है। वह अक्सर कहती है, 'आदमी की बात तो मैं एक बार मान सकती हूँ कि वह कुत्ते की तरह सब जगह मुँह मार सकता है, लेकिन वो औरतें कैसी होती हैं जो जानते-बूझते अन्धी हो जाती हैं, दूसरों का घर तोड़ती हैं। उन्हें दूसरी औरत के दुख-दर्द का बिल्कुल भी खयाल नहीं आता···अरे, कल को यही उनके साथ भी तो हो सकता है···' नहीं, इन्दु एक पल नहीं सहेगी···बिल्कुल नहीं। ही हैज लॉस्ट हिज केस कम्प्लीटली। इसी सब को लेकर तो सुबह भी हम लोग अपरिचितों की तरह बैठे थे और अगर ये लोग न आ जाते तो शायद आपस में एक बात न करते।

तारक अतिरिक्त अबोधता चेहरे पर ओढ़े, भकुआए भाव से मुझे देख रहा था जैसे इतनी साफ़ और सही बात में हँसने को क्या है? शायद

बीच में उसने कुछ कहने की कोशिश भी की।

तभी परदा हिला और शेव के सामान के साथ तौलिया लिये हुए सुरजीत ने प्रवेश किया। बड़ी-बड़ी आँखों में विस्मय-भरे कभी मुझे, कभी तारक को देख रही थी। शायद स्थिति समझने के लिए।

"अरे, अरे, तुम ये सब क्यों उठा लायीं? वो बादल क्या कर रहा है?" मैंने झटके से मुड़कर देखा तो एकदम बोल उठा। बढ़कर उसके हाथों से सामान ले लिया, हल्की-सी सचेतता के साथ कि हाथ बहुत अधिक उँगलियों को न छू जायें।

"वो शायद सब्जी लाने बाजार गया है।" कहकर सुरजीत दरवाजे पर खड़ी रही।

मैंने बीच की शीशेवाली मेज पर सामान रखते हुए पहली बार शायद सम्पूर्णत: सुरजीत को देखा···लम्बी-स्वस्थ और सुडौल देह, कनपटियों पर झूलतीं, लहराते सँपोलों-सी दो लटें, हल्का सुनहरापन लिये बाल। बनारसी साड़ी पहने बिल्कुल भी ऐसा नहीं लग रहा था कि इसने जिन्दगी-भर सलवार-कुर्ता पहने हैं। साड़ी बाँधने और सिर पर पल्ला रखने का सलीका उसके पीछे की समृद्ध पृष्ठभूमि का संकेत दे रहे थे। माँग में झाँकती चौड़ी सिन्दूरी रेखा, हाथों में चूड़ियों के साथ बंगाली कड़े, पावों में आलता···वह शुद्ध पंजाबी या बंगाली की अपेक्षा, उत्तर-प्रदेश के किसी शिक्षित घराने की कुल-वधू लग रही थी। उसके चेहरे और शरीर का लावण्य-लोच उसे पंजाबी नहीं लगने दे रहे थे और पूरे व्यक्तित्व का आत्म-विश्वास, दृढ़ता उसे बंगाली लगने से रोके थी। लड़की सुन्दर और सुसंस्कृत है, मैंने मन ही मन कहा। तारक इसके सामने निश्चय ही हल्का पड़ता है···यही सब सोचता हुआ मैं जल्दी-जल्दी पानी में ब्रुश डुबाते हुए कनपटियों पर फेरने लगा था और उठती हुई बात किसी तरह दब नहीं रही थी कि कहीं कुछ गलत हो गया है।

"तुम नहा लीं, सुरजीत?" मैंने सहसा ही पूछ लिया।

"अभी नहाती हूँ। पहले आप नहा लीजिए, आपको दफ्तर भी तो जाना होगा···" नहीं, उसकी आवाज में पंजाबी कर्कशता भी नहीं है, मैंने ध्यान दिया। जरूर ये लोग विभाजन से बहुत पहले आये हुए होंगे।

"मैं तो अब लंच के बाद ही आऊँगा···सब लोग साथ ही खायेंगे। तुम नहा लो···"

कुछ देर यों ही खड़े रहकर उसने कहा, "भाई साहब, आप अपना कोई काम हर्ज मत कीजिए···"

"क्या बात करती हो?" दुलार से मैंने उसे झिड़क दिया : "तुम लोग क्या रोज़-रोज़ इस तरह आओगे? क्या सोचोगी तुम भी कि तारक के दोस्त कैसे हैं···" और मेरा गला भर आया। उस क्षण उस लड़की के लिए बड़ी ही सहानुभूति उमड़ती महसूस हुई। पता नहीं, बेचारे किन-किन परिस्थितियों में पड़कर यहाँ आये हैं। हो सकता है तारक के कुछ परिचित रिश्तेदार यहाँ हों भी, लेकिन इसका कौन यहाँ होगा? और हो भी तो क्यों जायेगी उनके पास? अब ग़लत या सही, जो भी हो गया है, उसे अन-हुआ तो नहीं किया जा सकता है, हो सकता है, हम लोगों में ही कुछ अपनापन पाकर सुरजीत अपने को इतना दुर्बल महसूस न करे। कौन कह सकता है, किस क्षण की आत्मीयता कब जिन्दगी में किसे कितना बल-सम्बल दे जाती है। "तुम नहा लो सुरजीत, ये तारक बता रहे थे कि वहाँ नहाने-धोने का इन्तज़ाम नहीं है···" पता नहीं क्या सोचती हुई सुरजीत वापस अन्दर चली गयी। तारक बुरी तरह होंठ सामने निकाल-निकालकर एक के बाद दूसरी सिगरेट के कश लगाता रहा···मेरा क्या है, जितना चाहे फूँके···इस बार तो उसका अपना ही पैकेट है···फिर भी मन-ही-मन मैंने उसे माफ कर दिया···स्साला, क्या कहानी गढ़कर सुना रहा था। मैंने छल्लेदार काँचों के पार उसे अजनबी और अपनेपन के मिले-जुले भाव के साथ देखा···

उसी दिन साँझ को दोनों अपने-अपने अटैची और एक बिस्तरा लेकर बैठक में आ गये। बाहर की सीढ़ियों के एकदम पास वाला कमरा हमने बैठक बना लिया था, बीच में थी खुली जगह और उससे एक रास्ता बाथ-

रूम, एक किचिन, एक बाहर की सीढ़ी, एक बैठक और एक अन्दर के कमरे की ओर खुलता था। वहीं किचिन के दरवाजे के पास दीवार के सहारे खाने की मेज लगा ली गयी थी। वह खुली जगह एक तरह से चारों तरफ जाने के लिए पैसेज का काम करती थी। यहीं हम चारों ने बैठकर, एक परिवार की तरह गप्पें लड़ाई थीं, खाना खाया था, एक-दूसरे के हाथ देखकर भविष्यवाणियाँ की थीं। जब सुरजीत ने अपना हाथ बढ़ाया तो उसे झिझककर पकड़ते हुए मैंने कहा था, "कोई बहुत बुलन्द किस्मत वाला ही इस हाथ को पकड़ेगा। यह हाथ देखकर तकदीर बताने के लिए नहीं, पकड़कर किस्मत बनाने के लिए है।" इस बात से तारक हल्के गर्व से, गहरी साँस लेकर छाती फुलाने लगा था और सुरजीत का चेहरा गुलाबी हो आया था। सब्ज़ी उस दिन तारक ने बनायी थी और पराठे सुरजीत ने। उसी ने खूब फेंट कर बाद में एस्प्रैसो कॉफी पिलायी थी। बादल सिर्फ़ इधर-उधर काम करने, सामान लाने और ऊपर की भागदौड़ में लगा रहा था। उसे भी बड़ा कौतुकपूर्ण आनंद हो रहा था। लगता था जैसे बहुत दिनों बाद हम छुट्टी मनाने पिकनिक पर निकल आये हैं। बीच-बीच में मैं या तारक कह देते थे, "बस, कल से यहीं-कहीं पास ही जगह तलाश कर लेनी है···" "कल से ही नौकरी के लिए मैं अपने जान-पहचान वालों से कहता हूँ। तुम भी कोशिश करो।" मैंने नौकरी और कमरे के लिए कई सुझाव भी दिये थे, आस-पास बनते हुए मकानों के बारे में बताया था, जहाँ अभी से अच्छी जगह तय कर लेना दूर-दर्शिता का काम होगा। तारक कुछ अतिरिक्त ही खुश था, "बोदी, इतने दिनों में पहली बार सुरजीत इस घर में अपने असली मूड में आयी है, वरना वहाँ तो एकदम गंभीर हो गयी थी···मुझे तो इन्हें देखकर डर लगता था।" वह अपने बंगाली होने के कारण या आत्मीयता जीतने के लिए इन्दु को कभी 'बोदी', कभी 'भाभी' कहता रहा था। दोनों एक-दूसरे की झिड़की, खुशामद, शिकायत या प्यार में देख-देखकर खिल उठते थे।

शिकायत से सुरजीत ने कहा था, "अपनी नहीं कहेंगे, जब मैंने बताया कि डैडी ने लाहौर में पाँच आदमी खुद अपने हाथों से मारकर सड़ा दिये थे, तो एकदम चेहरा फक पड़ गया था, मुँह से बोल नहीं निकला था···।

अब कैसे हँस रहे हैं···" याद आया, पंजाबी में सड़ा देने का अर्थ जला देना होता है। बहुत दिनों बाद, सुरजीत के मुँह से पहली बार ठेठ पंजाबी शब्द सुना था।" तारक ने विरोध किया, "एकदम ग़लत बात है। मुझे डराने के लिए ज़बर्दस्ती अपने डैडी के बारे में ऐसी-ऐसी बातें बताती रहती थी जिसका न सिर होता था न पैर, दंगों में डैडी ने यों बन्दूकें चलायीं, यों गाड़ी से उस आदमी को कुचलते हुए अस्सी की रफ़्तार से भागते हुए निकल गये। यार, डैडी न हो गये साले हिटलर हो गये।" इस पर सुरजीत ने चुनौती दी, "अच्छी बात है, अभी कोई सारा मामला तय हो गया है? डैडी कैसे ज़िद्दी आदमी हैं तुम ख़ुद अपने-आप देख लेना। बदला लेने के लिए वो अपनी सारी प्रोपर्टी फूँक डालें तो उन्हें परवाह नहीं है।" अपने बाप की इस तारीफ़ में कहीं उसे बेहद गर्व भी हो रहा था और याद से गला भी भर्रा आता था। तारक ने लापरवाही से कहा, "ठीक है यार, तुम्हें देख लिया, अब तुम्हारे डैडी को भी देख लेंगे। जब उनकी लड़की को भगा लाने में जान नहीं निकली तो डैडी को समझाने में कितनी देर लगती है? उन्हें अपने रुपये का ही तो घमण्ड है न, कितना होगा उनके पास, पाँच लाख, दस लाख? हमने तो जब अपनी सारी ज़िन्दगी ही दाँव पर लगा दी तो न उनके रुपयों से डरते हैं न ख़ुद उनसे···मारकर हमें भी सड़ा ही तो देंगे न? चलो, उन्हीं के हाथों शहीद हो जायेंगे प्यार के नाम पर···कभी उन मेजर-कर्नल की बीवी बने हुए ध्यान आये तो हमें भी याद कर लिया करना कि कोई था जो प्यार की ख़ातिर शहीद हो गया···" सुरजीत खीझ और रीझकर कहती है, "बकवास करते हुए बड़े अच्छे लग रहे हो न? इस मुग़ालते में भी मत रहिए कि आप भगा लाये हैं··· मैं न आती तो बच्चू कैसे भगा लाते···? वो तो ख़ैर मानो, उस वक्त डैडी कहीं आस-पास दीखे नहीं, वरना साँस रुकी रह जाती।"

"डैडी, डैडी, डैडी।" झल्लाकर तारक बोला, "यार, डैडी न हुए साले कोई शेर हो गये। सिर्फ़ तुम्हारा लिहाज करके हम कुछ कहते नहीं हैं, वरना जो आदमी साक्षात शेर से लड़ लिया हो वह तुम्हारे डैडी को क्या समझेगा···?" उसे तैश आ गया।

"शेर से लड़ना क्या?" मैंने ज़रा दिलचस्पी से पूछा।

"हम एक बार शेर से भिड़ गये थे, मोहनदा।" उसने प्रयत्नपूर्वक बात को साधारण ढंग से कहने की कोशिश की। लेकिन ऐसी उत्तेजनापूर्ण बात को साधारण ढंग से कह पाना उसके लिए मुश्किल हो गया। पता नहीं क्यों, हल्के-हल्के काँपते हुए उसने दोनों हाथ ऊपर तानकर कमीज उठा दी, "आप खुद देख लीजिए मोहनदा, ये उसके पंजों के निशान सारे कन्धों और पसलियों पर पड़े हैं या नहीं ?" एक लम्बी टाँकों की लाइन और कई सफेद धारियाँ सचमुच उसके कंधे पर थीं।

"सचमुच ये शेर से लड़ने के निशान हैं ?" इन्दु ने भय से पूछा।

"अब क्या है ? ये शेर के क्या, खुदा के बनाये निशान बतायेंगे। कोई जाँचने वाला तो है नहीं, कहीं गिर-गिरा गये होंगे या किसी कुत्ते-बिल्ली ने पंजा मार दिया होगा, आज सबको बताते हैं, शेर से लड़े हैं। शेर से लड़ने वालों की सूरत देखी है कभी शीशे में ?" सुरजीत ने मजाक उड़ाते हुए कहा।

इस बार प्रकट अविश्वास से इन्दु बोली, "आप शेर से लड़े थे ?"

"बोदी, हम कसम खाकर कहते हैं, शेर से लड़ने के ही निशान हैं। शेर की ही एक नस्ल होती है बाघ। शेर से छोटा होता है और चीते जैसा होता है; उसी से भिड़ गये।" मैं और इन्दु उसका किस्सा जानने को व्याकुल हो उठे, सुरजीत के चेहरे पर मजाक की जगह अब मुग्ध-भाव आ गया। उसने ज़रूर वह किस्सा पहले सुना होगा। अब कुछ हीरो की अदा से तारक ने बताया, "मोहनदा, उस वक्त हमने एम० ए० प्रीवियस का इम्तहान दिया था। छुट्टियों के दिन थे। हम तीन लड़कों ने तय किया कि ये गर्मियाँ पहाड़ों पर काटी जायें। स्टूडैण्ट-लाइफ के दिन थे, पैसा बहुत था नहीं, लेकिन जोश बहुत था। सोचा, काठगोदाम से पैदल ही रानीखेत, अल्मोड़ा का चक्कर लगाया जाये। बस साहब, चल दिये तीनों तिलंगे। सारे दिन चलते और जहाँ मौका लग जाता वहीं सो जाते। रानीखेत में तीन-चार दिन रुकने का इरादा हो गया; लेकिन सीजन के दिन थे। होटल वाले बात नहीं करते थे। सो, मील-डेढ़ मील नीचे उतरकर किलकोट नाम की जगह में बहुत सस्ता-सा कमरा ले लिया। सारे दिन इधर-उधर घूमते और थककर लस्त होकर सो जाते। मकान

वाले ने पहले दिन ही बता दिया कि रात-बिरात ज़रा होशियारी से निकलिए, यहाँ कभी-कभी बाघ आ जाता है। कमरे में या उस घर में बाथरूम नहीं था, इसलिए निकलना तो पड़ता ही था। तीनों साथ ही निकलते। हाथ में एक-एक डण्डा और टार्चें, बस यही हथियार हम लोगों के पास थे। सुना था कि टार्च की रोशनी से बाघ डर जाता है। एक दिन चाँदनी रात में निकले तो घूमते और गप्पें लगाते ज़रा और ऊपर निकल गये, सड़क पर नहीं, यों ही पहाड़ी चढ़ावों पर। ऊपर सपाट-सी जगह पर एक पत्थर पर बैठकर तीनों अपने-अपने बचपन के किस्से सुनाने लगे। लम्बे-लम्बे चीड़ों के पेड़ों पर चाँदनी थी और नीचे उनके तनों से लटके गमलों से बिरोजे की गंध आ रही थी। अचानक सामने से सरसराहट हुई और साथ ही सामने गधे के बराबर कोई छाया खड़ी दिखायी दी। पहले तो किसी गाय-वाय का भ्रम हुआ। अब उस दिन हमारे पास न डण्डा, न टार्च। चाँदनी के कारण टार्च ली नहीं और डण्डा उठाते-उठाते छोड़ आये, तीन-तीन आदमियों को देखकर किसकी हिम्मत होगी, यह सोचकर। इसलिए एकदम डरकर चुप हो गये, एक-दूसरे को कुहनियों से बताया कि वो देखो, क्या है ? ज़रा-सी देर में साफ़ दीखने लगा कि कोई जानवर ही आ गया है। अब वह इतनी दूर कि आवाज़ भी लगायें तो किसी को सुनायी न दे, फिर रात को दो बजे इतनी जल्दी कौन आता ? उधर उसकी आँखें बिजली की तरह चमक रही थीं और पूँछ यों तनकर हिलने लगी थी जैसे अब उसने हम लोगों पर छलाँग लगायी, अब लगायी। पहले तो हम लोग बौखला गये, डर के मारे समझ में ही न आये कि करें तो क्या करें—हमारे और उसके बीच सिर्फ़ पन्द्रह-बीस गज की दूरी, आस-पास न कोई पेड़ न आड़। हमारे तो हाथ-पाँव काँपने लगे, पसीने से कपड़े भीग गये। अचानक देखा, वो दोनों उठकर एकदम भाग लिये। अब हमसे उठा ही न जाये। लगा, घुटनों में दम ही नहीं है। खयाल आया कि अन्तिम समय आ गया और आँख बंद करके अपने को उसके हवाले करने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है। आस-पास कहीं ढाल होता तो हम भागने की बजाय उसमें लुढ़क जाते, यह जानते हुए भी कि वहाँ के ढालों पर एक बार लुढ़कने के बाद हड्डी-पसली नहीं बचती। अब हमसे आँखें

भी बंद न की जायें, लगातार उसकी तरफ़ देखते हम पत्थर की तरह बैठे रहे। एकाध सैकेण्ड ही यों गुज़रा होगा, लेकिन हमें लगा जैसे घण्टों गुज़र गये। फिर पता नहीं, क्या हुआ। वह हमारे ऊपर उछला या हम दौड़कर उसके पास पहुँचे। एक बिजली-सी कौंधी और फिर हमने पाया कि हम सारी ताक़त से उसकी गर्दन को अपनी बाहों में कसे हैं, सारे शरीर से उसके पेट से चिपके हैं और अपने दोनों साथियों को आवाज़ लगा रहे हैं। इतनी ताक़त हम में जाने कहाँ से आ गयी थी या हमारे ऊपर कोई भूत सवार हो गया था कि उस समय लगा कि अगर इसी तरह इसकी गर्दन घोंट दी जाय तो छुटकारा हो सकता है। हम दोनों ज़मीन पर गुत्थमगुत्था किये पड़े थे, तभी जाने कहाँ से दोनों साथी लौट आये और पत्थरों और ठोकरों से उसे मारना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में उसकी सारी कसावट ढीली पड़ गयी, लेकिन वो थे कि दोनों तरफ से लगातार बूट मारे जा रहे थे। हमने तो सिर्फ़ इतना सुना कि "मर गया..." इसके बाद कोई होश नहीं रहा। दो या तीन दिनों बाद होश आया तो पट्टियाँ कसी थीं, खिरची बँधी थी। लोगों ने बताया कि बेहोशी में भी हम चिग्घा-ड़ते थे और भागते थे, साथियों को आवाजें देते थे। ख़ैर साहब, उसके बाद तो अख़बारों में तस्वीरें, ख़बरें, लोगों से मिलना, क्या नहीं हुआ? लौटे तो वो स्वागत हुआ कि मज़ा आ गया। कॉलेज में तस्वीरें लगायी गयीं। लेकिन मोहनदा, हमें आज भी विश्वास नहीं होता कि यह सब हमसे ही हुआ था।"

"अच्छा, यह सब हुआ तुम्हारे साथ ?" मैंने याद करते हुए कहा, "मैंने स्टेट्समैन या किसी जगह ऐसी ख़बर पढ़ी तो थी कोई, लेकिन मुझे क्या पता था कि वह ख़बर तुम्हारे बारे में ही थी। शायद अख़बारवालों ने लिखा था कि इस कारबेट क्षेत्र में निहत्थे बाघ को मार डालने का यह चमत्कार पहले कभी नहीं हुआ। लेकिन तारक भाई, मुझे विश्वास नहीं होता।"

"हमें ख़ुद नहीं होता।" तारक ख़ुद विस्मय से बोला, "पहले कुछ साल तो हम भी बड़े गर्व और दंभ से यह बात लोगों को सुनाते, अपने घाव दिखाते, तस्वीरें दिखाते; लेकिन अब तो लगता है कि सब ग़लत था, वह

हमने नहीं किया था। तीनों के साथ अक्सर उस बाघ की तस्वीर देख कर खुद आश्चर्य करते हैं कि वह हमने ही किया था ? लेकिन जब भी अपने दोनों साथियों से मिलते हैं तो वे इसका जिक्र करते हैं, हम लोग खूब लड़ते भी हैं कि साले, तब हमें मौत के मुँह में डालकर भाग गये थे, तस्वीर खिंचवाते, कॉलेज में मालाएँ लेते वक्त कैसे तनकर खड़े हो गये थे जैसे उन्होंने ही उसे मारा हो।"

फिर थोड़ी देर चुप्पी रही। सुरजीत मुग्ध थी कि उसने सचमुच एक हीरो को चुना है। आश्चर्य, अविश्वास, श्रद्धा से इन्दु की आँख बहुत चौड़ी हो गयी थीं। उसने उन निशानों को दुबारा देखा था। लेकिन मुझे फिर भी लग रहा था कि यह आदमी वह काम नहीं कर सकता, बंगाली आदमी कहानी बहुत अच्छे ढंग से सुना लेता है, सो इसने कहानी सुना दी, लेकिन किसी भी तरह वह कहानी सामने वाले आदमी से नहीं जुड़ रही थी। मैंने बिना किसी प्रयोजन के यों ही कह दिया, "आदमी तो तुम बड़े सूरमा लगते हो···।"

"सूरमा-वूरमा तो हम नहीं हैं मोहनदा, बस यों समझ लो कि तब इसके सिवा कोई चारा रह नहीं गया था। हम उसके गले से न लिपट जायें तो वो हमें खा जाये।" कुछ सोचते हुए तारक बोला, "अब तो हम कभी-कभी सोचते हैं कि यह भी हो सकता था कि वो हमें थोड़ी देर यों ही घूर-घार कर चला जाता, लेकिन वो सारा वातावरण छाती पर ऐसा सवार हो गया था कि सामने इसके सिवा कोई रास्ता नहीं बचा था। हम उसके छलाँग लगाने से पहले ही उसके ऊपर टूट पड़े। अब तो हम सोचने लगे हैं कि वीरता कोई ऐसा विशेष गुण नहीं है जो किन्हीं ख़ास तरह के स्वस्थ या हिम्मतवाले लोगों में ही पाया जाता है, वह केवल एक क्षण होता है जो महीने भर के बीमार, दिल के मरीज पर भी आ सकता है।"

मुझे लगा, तारक ने अपने अनुभव से एकदम सही निष्कर्ष निकाल लिया है, वह क्षण भी नहीं, आवेश-भरे दबाव का शायद एक ऐसा क्षणिक विस्फोट होता है, जिसका अनुभव सिर्फ कायर ही कर सकता है, क्योंकि भय और आतंक के तोड़ देने वाले इस बिन्दु को उसके सिवा महसूस ही

कौन करेगा। यानी चरम शौर्य के काम पक्के कायर के सिवा कोई कर ही नहीं सकता और उस क्षण के गुजर जाने के बाद इन पर सबसे अधिक अविश्वास अगर किसी को होता है तो केवल उसी आदमी को। अपने को समझते हुए वह किसी दूसरे आदमी की निगाह से सारी स्थिति को देखता है और स्वयं आतंकित रहता है; सचमुच क्या वह क्षण उस पर ही आया था ?

इन्दु को विश्वास नहीं हो पा रहा था और वह बार-बार पूछ रही थी, "आपको उस समय कैसा लगा था ?" और इन सवाल-जवाबों के बीच मुझे अपने भीतर का सोचना निहायत ही विकृत और नीच लगा। सोचने का यह कोण सामने वाले व्यक्ति के प्रति अविश्वास से ही पैदा हुआ होगा। मगर मैं इस कहानी पर विश्वास नहीं कर सकता तो अविश्वास करने का ही मुझे क्या हक़ है ? सिर्फ एक अच्छी, मनोरंजक कहानी के रूप में ही सुन लेने में मुझे क्या आपत्ति है ? इसे यों सुनने की मुझे क्या ज़रूरत है कि शौर्य आदमी का मौलिक गुण है या एक कायर का क्षणिक आवेश ? अपने को झटक कर मैंने कहा, "तुम तो सचमुच हीरो हो तारक…"

"यह सब मत कहिए, हमें आज पता नहीं क्यों, कहीं भीतर यह अपमान जैसा लगने लगा है…।" तारक ने बात कुछ ऐसी ईमानदारी से कही कि मुझे लगा कि वह सच बोल रहा है।

इस तरह का हीरो चाहे वह अपने को न मान रहा हो, लेकिन दोनों को ही उस समय यह ज़रूर लग रहा था कि वे रूढ़ियों-परंपराओं को तोड़ने वाले हीरो-हीरोइन ज़रूर हैं। हमें भी खुशी हो रही थी कि न जाने कितने दिनों बाद इस घर में वे यों अपनापन महसूस कर रहे हैं। वे दोनों दूसरे के यों खुश होने पर खुश थे। यह सारी कहानी कॉफी के प्याले सामने रखकर कही गयी थी और मुझे आश्चर्य हुआ कि एकाध बार को छोड़कर मेरा ध्यान उसके छल्लेदार काँचों की ओर नहीं गया था। ज़रूर यह चश्मा उसी समय कहीं दूर जा पड़ा होगा और दूसरे दिन ही लोगों को मिला होगा। इस सारे प्यार अपनेपन के माहौल और शौर्य की कहानी के बावजूद मेरा ध्यान गया कि तारक की खुराक ठेठ पंजाबियों वाली है…मन में कहा, एकाध महीना कलकत्ता रहोगे तो फिर वही तीन-चार रोटियों पर

आ जाओगे। इन्दु के मना करने पर भी सुरजीत ने जाकर बादल के साथ प्लेट-प्याले धुलवा डाले थे। रसोई और रसोई के कामों से इन्दु को निहायत ही नफ़रत है, फिर भी वह किचिन के दरवाज़े पर खड़ी-खड़ी बात करती हुई अपनी समझ से काम में हाथ बँटा रही थी। मैंने अब तारक को माफ कर दिया था। मान लो मेरा छोटा भाई ही यह सब कर आता तो मैं क्या करता ? लेकिन तभी ध्यान आया कि इसने सुबह एक और कहानी गढ़कर सुनायी थी अपने बीवी-बच्चों की···मैंने इस समय तय कर लिया कि दोनों ही कहानियाँ मनगढ़ंत हैं, हो सकता है भागने वाले दोनों साथियों में ही यह रहा हो। बड़प्पन और हल्के प्यार से मैंने सोचा स्साला इन्हीं सब कहानियों से सुरजीत को बहका लाया है। 'गुड-नाइट' की सांकेतिक विदाइयों के साथ हम लोग अपने-अपने कमरों में आ गये। उन लोगों ने हल्के-से दरवाज़ा बंद कर लिया, लेकिन देर तक हँसने-खिलखिलाने की आवाज़ें आती रहीं। एक बार तो सुरजीत देर तक इस तरह हँसती रही जैसे वह उसे दबोच कर गुदगुदी कर रहा हो।

मुझे खुशी इस बात की थी कि इन्दु ने बिलकुल भी दूरी और खिंचाव के भाव नहीं दिखाये थे। अपने आप से उठकर दूसरों की जिन्दगी में हिस्सेदार बनने की भावना से आपसी तनाव भी अपने-आप स्थगित हो गया था। लेकिन जैसे ही हमने अपने कमरे का दरवाज़ा भिड़ाया, अचानक एक चुप्पी का वातावरण छा गया। जैसे हम दोनों ही बहुत थक गये हों। मुझे लगा, अगर अब हम चुप रहेंगे तो वह स्थगित तनाव फिर उभर कर सतह पर आ जायेगा। मैं उसे कपड़े बदलते देखता रहा, उस कमरे में सुरजीत भी इसी तरह कपड़े बदल रही होगी। लेटते ही मैंने कहा, "दोनों में बड़ा प्यार है···"

"शुरू में सभी में होता है।" संक्षिप्त-सा उत्तर देकर इन्दु करवट बदलकर खिड़की से बाहर झाँकने लगी। शायद उसे भी लगा कि उसकी बात में कहीं अपने लिए भी संकेत आ गया है। धीरे से बोली, "मुझे तो लड़की बड़ी समझदार, संतुलित और प्यारी लगी। उसके मुकाबले तारक में बल्कि मुझे हल्कापन लगता है। सुरजीत के न खाने पर तारक जब उसे मनुहार करके अपने हाथ से खिला रहा था तो उसे बहुत अच्छा नहीं लग

रहा था। देखा नहीं, मेरी और तुम्हारी तरफ कैसे देख रही थी···?"

"मैंने ध्यान नहीं दिया···" अँधेरे में ऊपर घूमते पंखे पर बाहर से आती रोशनी की एक लपलपाती किरण को ताकते हुए मैं बोला। हालांकि सुरजीत का धर्म-संकट मैंने देखा था। लेकिन सुरजीत सुन्दर थी और बात उसे घूरने पर आकर टूट सकती थी। सोचते-सोचते बोलने लगा, "सारी चीज़ें इतनी आसान और सीधी नहीं हैं, जितना हम लोग समझते हैं। बड़ा झंझट है इन लोगों के साथ···"

"हाँ, सुरजीत बता रही थी कि तारक शादी-शुदा है और उसके तीन बच्चे हैं। इसलिए कानूनी तौर पर सारी बातें बड़ी उलझी हुई हैं। मुझे तो यही लगता है कि सब जानते-बूझते इन लोगों ने यह कर क्या डाला है?"···इंदु कहती रही, अँधेरे में बोलती इंदु नहीं, केवल उसका स्वर ही मुझे सुनायी देता रहा।

तो इन्दु को सारी स्थिति बता दी गयी है। कहीं मन का बोझ उतरता-सा भी लगा कि उसने सारी बात को उस ढंग से नहीं लिया जिसकी मुझे आशंका थी। समाज को बदलने वाले किसी काम में हम लोग भी अपना हिस्सा कहीं पूरा कर रहे हैं, यह भावना सुबह से मन को बड़ा सन्तोष दे रही थी। "वो कहता है कि उसने सारी बातें खोलकर सुरजीत को बता दी थीं, लेकिन मैं इस बात को नहीं मानता। जरूर ही छिपाया होगा और सुरजीत के घर छोड़ देने पर अगर ट्रेन में या कहीं और बताया भी हो, तो उसका कोई मतलब नहीं है। सारी कहानी को कुछ इस तरह रखा होगा कि अब पीछे लौटना हो नहीं सकता, इसलिए स्थिति को जैसे का तैसा स्वीकार कर लेने के सिवा कोई और रास्ता ही नहीं है। आज तो सुरजीत का यह कहना कहीं भी ग़लत होगा कि उसे पता नहीं था।"

"सच-झूठ का तो मुझे भी पता नहीं, लेकिन सुरजीत तो यही कहती है कि उसे पता था। बल्कि वह तो यहाँ तक कह रही थी कि डैडी ने कई दिनों इस बात पर भी समझाया था। उन्होंने शायद पता लगा लिया था कि तारक शादी-शुदा है और उसके तीन बच्चे हैं। इस पर इसने कह दिया कि तारक ने यह बात उसे बता रखी है। यों लड़का उन्हें भी बुरा नहीं लगता, वे तो कहते हैं कि इसके साथ झंझट न होता तो अपने व्यापार में

हिस्सेदार भी बना लेते। आठ-दस लाख की सम्पत्ति है और एक लड़का और यह लड़की—यही दो बच्चे हैं। लड़का आजकल जर्मनी गया है पिस्टन बनाना सीखने," इन्दु बताती रही।

"अच्छा! बड़ी बातें तुम लोगों ने कर डालीं।" मैं अपने-पन से बोला। इन्दु हरेक से इतनी जल्दी कभी घुलती-मिलती नहीं है।

"आप लोग जब मिठाई लेने गये थे तो हम लोग यही बातें कर रहे थे।"

जागने और नींद आने के बीच की स्थिति में मैं उन्हीं लोगों की बातें सोचता रहा था। अब हल्का आश्चर्य हो रहा था कि बाघ वाले उस झूठे किस्से को सुनते हुए मेरे मन में साधारण उत्सुकता के भाव भी कैसे आ सके? यह जानते हुए कि सारी बातें गढ़ी हुई हैं और केवल सुरजीत को प्रभावित करने के लिए किसी समय कही गई होंगी और उन्हें आज भी उसी तरह निभाये चले जाना तारक की मजबूरी है। शायद इन्दु ने कहा था, "लड़की बड़ी चार्मिंग है।" या शायद नहीं कहा था। जो चीज मेरी समझ में नहीं आ रही थी वह यह कि पंजाबी लड़की पर आखिर कैसा पागलपन सवार हुआ कि सब-कुछ जानते-बूझते ऐसे खूँखार और खतरनाक बाप की चिन्ता किये बिना यों इस गप्पी के साथ चली आयी है? मुझे न किसी जाति के प्रति पूर्वाग्रह है, न किसी प्रान्त के। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि भौगोलिक और सामाजिक वातावरण आदमी के मनोविज्ञान को बनाने में बहुत बड़ा कारण होता है। बंगाल की नम और सीली आबहवा आदमी को भावुक आदमी न बनाये, यही परम आश्चर्य है। पंजाब समतल और सख्त प्रदेश है और वहाँ के लोग कविता और रूमान के हवाई संसार में कम, धरती के खुरदरे स्तर पर अधिक रहते हैं। तब क्या सचमुच प्यार जैसी कोई ऐसी भी चीज होती है जिसमें आदमी अपना भविष्य, अपना जीवन, अपनी सुरक्षा सभी कुछ तुच्छ समझने लगता है? सिनेमा और साहित्य के संस्कार जरूर ऐसे हैं, लेकिन जिन्दगी में तो प्यार दो स्वार्थों के सम्मान-जनक समझौते का ही दूसरा नाम लगता है, या बचपन का प्यार केवल एक-दूसरे के 'भूगोल' को जानने और अपने अनसमझे उद्दाम आवेग को शान्त करने का अन्धा प्रयास, जिसमें सिनेमा और

हल्के उपन्यास अपने डायलॉग दोनों के दिमाग़ों में भर देते हैं। तारक इस उम्र को पार कर आया है, सत्ताइस-अट्ठाइस का होगा···सुरजीत मुश्किल से बाईस की होगी। इन्दु ने एक बार मेरे ऊपर आरोप करते हुए कहा था, "लड़कियाँ तो कुछ समझती नहीं हैं और ये शादी-शुदा आदमी उनकी इस नासमझी का फायदा उठाते हैं, क्योंकि इन्हें सभी कुछ पता होता है।" हो सकता है माँ न होने की वजह से सुरजीत बहुत अकेलापन महसूस करती हो, बड़ी भावुक रही हो और शरच्चन्द्र इत्यादि पढ़कर बंगाली लोगों के लिए एक ख़ास तरह की रूमानी तस्वीर मन में संजोये रहती हो, इसलिए जो भी पहला बंगाली मिला उसे ही समर्पित हो उठी हो··· लेकिन जिन्दगी मैंने भी दिल्ली और उत्तर प्रदेश के पश्चिमी इलाकों में ही बिताई है। इन लोगोंमें इस तरह की रोमांटिक भावुकता गले नहीं उतरती ···खूब खिलता हुआ गोरा रंग, साटन और नायलोन के एक-से-एक कीमती कपड़े, खूब गहरी लिपिस्टिक और चमकदार सैण्डिल, सड़क के किनारे गोल-गप्पे और चाट की प्लेटें लिये निश्चिन्त भाव से हँसना या स्कूटर के पीछे खूब चिपक कर बैठना···यही तसवीर मेरे मन में पंजाबी लड़की की उभरती है। कीमती रेस्तराँ हो या सड़कें, बिना खाने की चीज़ सामने रखे मैं किसी भी पंजाबी की कल्पना नहीं कर पाता···लेकिन अपवाद सभी जगह होते हैं और यों किसी प्रान्त की विशेषताएँ निर्धारित कर लेना, फिर हर कहीं उनका आरोप करना अपना ही दिमाग़ी ओछापन है, सोचता हुआ मैं सो गया।

हल्के झटके के साथ अचानक नींद खुल गयी। कहीं कोई आवाज़ या खटका जैसा कुछ भी नहीं था। इन्दु उसी तरह करवट बदले सो रही थी। एक अश्लील-सी बात मन में आयी, चुपचाप बैठक के दरवाज़े से कान लगाकर सुनूँ —अन्दर वे लोग क्या कर रहे हैं ? क्या सुरजीत उसी तरह निरावरण और निस्संकोच तारक से लिपटी सो रही होगी, जैसा सामान्य स्थिति में कोई भी लड़की करती ? उसके मन में कोई 'द्विधा' नहीं होगी कि उसकी स्थिति कुछ विशिष्ट है और उसे अभी वह सब नहीं करना चाहिए···निरावरण कैसी लगती होगी ? लेकिन इन्दु की ओर देखकर मैंने अपने इस इरादे को दबा दिया। मैं कान लगाये दरवाज़े पर खड़ा

होऊँ, और ठीक उसी समय भीतर से दोनों में से कोई बाथरूम जाने या पानी पीने के लिए ही बाहर निकले···या मुझे भीतर न पाकर इन्दु ही बाहर निकल आये···तब मेरी स्थिति क्या रह जायेगी ? फिर मैंने पाया कि मैं जिस चीज़ से चौंककर जागा था वह एक विचार था···हो सकता है, इन लोगों का पहले ही शरीर-सम्बन्ध रहा हो, फिर कुछ गड़बड़ हो गयी हो और हो सकता है कि उस समय सुरजीत के सामने केवल यही रास्ता बचा हो कि वह घर में भाभी और दूसरे रिश्तेदारों की आँखों से बचने के लिए ऐसा कदम उठाये···लेकिन दिल्ली में तो न जाने कितनी लेडी-डॉक्टर हैं जो केवल यही काम करती हैं। हो सकता है, इस तरह की सुविधा नहीं रही हो···इस स्थिति में लड़कियों के आत्महत्या कर लेने, भाग जाने के कितने केस मैंने सुने हैं। ज़रूर यही बात रही होगी ···प्यार-व्यार के रूमानी नशे की अपेक्षा यह कारण कहीं गले उतरने वाला है। मुझे अपना यह विचार इतना सटीक लगा कि दिमाग़ का सारा बोझ उतर गया और मैं फिर सो गया। सुबह तय कर पाना मेरे लिए मुश्किल हो गया कि रात में सचमुच जागा था या सोते-सोते ही यह सब सोच डाला था···केवल धुँधला-सा यही ख़याल था कि रात को एक बार उठा था तो बैठक के बन्द दरवाज़ों की दरार से रोशनी झाँक रही थी··· सोचा, इशारे से कहूँगा कि यहाँ बिजली दिल्ली की तरह सस्ती नहीं है। मगर कल की उनकी पारस्परिक मुग्धता और उल्लास का ध्यान आया तो अपनी यह बात बहुत ही ओछी लगी।

सुबह फिर हम लोग उसी तरह मेज़ के आस-पास बैठे थे, बेड-टी की राह में। बादल भीतर चाय बना रहा था। तारक अलसाया-सा उठकर कुर्सी की पीठ पर बाँह के सहारे लदा सिगरेट पीता हुआ कुछ सोच रहा था। लगा, वह लिहाज़ में इतनी जल्दी उठ बैठा है, वरना शायद एकाध घण्टा और भी सोता। छल्लेदार काँचों के पीछे से आँखों की लाल किना-रियाँ अब एकदम ध्यान खींचती थीं। मैंने पूछा : "कहिए साहब बहादुर, कैसी नींद आयी ?" पूछना चाहता था रात कैसी कटी।

"फाइन ! मुझे तो सब जगह नींद आ जाती है।" उसने उँगली से आँख के कोने में जम आया कीचड़ साफ़ करते हुए जवाब दिया। ढीड़

निकालने से उसकी आँख खिचकर बहुत लम्बी हो गयी थी। "यह बैठी-बैठी बड़ी देर तक किसी को चिट्ठियाँ लिखती रहीं।" उसने ज़ोर से सुरजीत को सुनाकर कहा : "पूरा दफ्तर खोलकर बैठी थीं, शायद दो-तीन दर्जन ख़त लिखे होंगे।" बैठक के दरवाज़े भिड़े थे और अभी सुरजीत अन्दर ही थी।

बादल चाय रख गया तो इन्दु ने पुकारा, "आओ भाई सुरजीत, क्या कर रही हो?" और वह प्याले सीधे करके चाय बनाने लगी।

"आयी!" कहकर सुरजीत जब बाहर निकली तो उसके एक हाथ में झाड़ू और दूसरे में समेटा हुआ कचरा था। वह बैठक झाड़कर निकल रही थी।

"अरे, तुम्हें ये सब करने की क्या ज़रूरत थी?" मैंने नकली डाँट से उसे झिड़क दिया, "बादल कर लेता न? दो दिनों को आयी हो और यह सब कर रही हो।"

"फिर हो जाता बाद में···" इन्दु ने ख़ुद चाय का प्याला उठा लिया था।

"क्या हुआ भाभी, हम लोग बाहर के बनकर कब तक रहेंगे?" बड़े स्वाभाविक लहजे में कहकर सुरजीत ने वाश-बेसिन के पास रखी टोकरी में कचरा डाला, झाड़ू टिकायी और हाथ धोकर सामने आ बैठी।

तारक ने किसी क़दर सख़्त आवाज़ में कहा, "हाँ, सारा दिन तो पड़ा था। पहले चाय पी लेतीं। सारी रात तो चिट्ठियाँ लिखती रही हो···।"

लगा, वह सफाई दे रहा है कि रात-भर वह सोया है और सुरजीत चिट्ठियाँ लिखती रही है। उन्होंने और 'कुछ' भी नहीं किया। हँसी आयी। अगर पूर्णिमा के साथ कहीं गया होता तो शायद मैं भी ऐसा ही व्यवहार करता। मैंने सुरजीत के चेहरे की ओर देखा। हल्की सलेटी, सूती साड़ी में भोली और सुथरी लग रही थी। जब कचरा लेकर इधर से गयी थी तो अनजाने ही सारे शरीर का मुआयना किया था। सोते में ही सही, वह अपना विचार मुझे काफ़ी नीच और निराधार लगा। इस लड़की के साथ ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। कहीं बड़ा निश्छल और एकान्त प्यार ही

इस सब के पीछे है। इन लोगों को 'शरण' और 'सहायता' देने में यही भावना तो मेरे अवचेतन मन में नहीं है कि मैं अपनी और पूर्णिमा की ऐसी ही स्थिति की कल्पना करता हूँ ? हाँ, शायद यही है। आश्चर्य हुआ कि कल से यह बात अभी तक मेरे मन में क्यों नहीं आयी···?

तारक उसी तरह मेरी सिगरेटें फूँक रहा था। आँखों के कोनों पर एक-एक सफेद बूँद जैसा कीचड़ मन को बेचैनी से भर देता था। एक-एक नथुने को बारी-बारी से साफ करते हुए बोला, "इन फैक्ट मोहनदा, चिन्ता के मारे नींद हमें भी रात-भर नहीं आयी। यहाँ तो गढ़ी जैसी परेशानी और असुविधाएँ नहीं हैं, फिर भी···"

इस बार कुछ अधिक खुलकर सुरजीत ने कहा, "तीन-चार दिन हो गये, ठीक से सोते नहीं है। मैं कहती हूँ इस तरह परेशान होने और चिंता करने से क्या फायदा, जो कुछ करना-कराना है सो करो···"

"करो, तुमने तो कह दिया।" झल्लाकर वह बोला, "कल को वारण्ट आयेगा, दोनों हवालात में होंगे, तब तुम्हीं रोओगी कि मुझे कहाँ लाकर फँसा दिया ?"

"तो भाई, जो भी करना है वह करना तो होगा ही न ?" सुरजीत ने उसी शान्त स्वर में समझाते हुए कहा, "यों बैठकर वारण्ट की राह देखने से कैसे काम चलेगा ? इस तरह तो पास के सौ-डेढ़ सौ भी ख़त्म हो जायेंगे तो हम लोग क्या करेंगे ?"

"तुम बकवास मत करो···" बात के साथ ही शायद उसे हम लोगों का ध्यान आया। अपने को रोककर गहरी साँस लेते हुए बोला, "हाँ, यही तो सोच रहा हूँ। गोयल ने अपने किसी वकील दोस्त से सलाह ली है। वो कहता है कि सबसे पहले बनारस जाकर पहली शादी को ख़त्म करो। कोर्ट में जाकर नालिश करो कि वह औरत बदचलन है और दस साल से मेरे इससे या अपने घर से कोई सम्बन्ध नहीं हैं। ये दोनों लड़के पता नहीं किसके हैं···वह शादी ख़त्म होगी, तभी यह शादी हो सकेगी और कानूनी मानी जायेगी।"

शायद इन्दु के मन में भी यही बात आयी कि दस साल बनारस न जाने और पीछे से बच्चे हो जाने का किस्सा इसी मंशा से गढ़ा गया है।

मैंने पूछा, "लेकिन तुम यह कैसे साबित करोगे कि तुम बनारस गये ही नहीं ? पत्नी अपने माँ-बाप के साथ रहती है या तुम्हारे ?"

"रहती तो हम लोगों के ही साथ है।" वह उसी तरह आँखें मलता रहा। रात के पान से उसके दाँत बेहद मैले थे और बातें करते हुए तार छूटते थे। "और हमारे घर वाले भी उसी का साथ देंगे···एक तो इस तरह शादी करना और वो भी पंजाबी लड़की से···वो किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं करेंगे। अभी भी वो साले अपने को इज्जतदार बनारसी बंगालियों में समझते है।"

"तो ?" मन में आया, ये कानूनी बातें इसने कल क्यों नहीं बतायी थीं ?

"इधर गोयल के दोस्त का कहना है कि अगर सुरजीत के डैडी जिद पर ही आ जायें तो बनारस जाकर उन्हें भड़का सकते हैं। मेरी बाइफ और उसके घर वाले मेरे ऊपर बहु-विवाह का केस बड़ी आसानी से चला सकते हैं। दूसरी लड़की को पत्नी की तरह रखना या एक के रहते दूसरी शादी करना आज पहले की तरह आसान तो रह नहीं गया है···" वह सुरजीत की ओर देखता रहा।

"लेकिन ये सब न आपके घर वाले करेंगे न इनके डैडी।" इन्दु ने इस चिन्ता को एकदम रद्द कर दिया और उठ खड़ी हुई।

"नहीं भाभी, बात ऐसी नहीं है डैडी। जिद पर आ जायें तो खुद पैसा देंगे इनके घर वालों को और कहेंगे कि कोर्ट में दावा करो। पैसे की तो चिन्ता उन्हें है ही नहीं···।" सुरजीत बोली।

"मान लो और कुछ न करें तो कलकत्ते में दो गुण्डे पीछे लगाने का काम तो जब चाहें तभी कर सकते हैं।" तारक ने इन्दु से मुखातब होकर बताया।

"ऐसा करेंगे तो खुद बचे रहेंगे ?" इन्दु तेज स्वर में बोली। "हर कोई जानता है कि उन्हें आपसे क्या शिकायत है।"

"मरवाकर हुगली में फिकवा दिया तो बाद में कुछ होता रहे···।" तारक की आवाज काफ़ी बुझी हुई थी। "और वो पैसे वाले आदमी हैं। उनका कुछ भी नहीं होगा। इनका भी कुछ नहीं है। दो-चार साल बाद

किसी मेजर-कर्नल की बीवी बनी मौज कर रही होंगी।"

"बस भाभी, मुझे इस तरह की बातों से ही गुस्सा आ जाता है।" भड़क कर सुरजीत बोली, "डैडी जैसे हैं, वैसे हैं। मैंने तो उन्हें बनाया नहीं है। ये सारी बातें तो इन्हें पहले सोचनी चाहिए थीं।" उसकी आँखों में आँसू आ गये, पता नहीं अपने ऊपर अविश्वास से या डैडी-निन्दा से। "तब तो छाती ठोककर बोले थे कि मैं शेर से लड़ा हूँ, मुझे तुम्हारे डैडी की क्या फ़िकर।"

मुझे ये सारी बहस बहुत ही हवाई लग रही थी। दोनों हाथ फैलाकर बहस समाप्त करने के अन्दाज़ से कहा, "यार, ये सब तो जब होगा तब देखा जायेगा। अभी तो ऐसा कुछ भी नहीं है न। सबसे पहले तो तुम लोग यहाँ कोई जगह तलाश कर लो, कोई नौकरी खोज लो। पैर टिकाने की जगह हो जायेगी तो सब बातों का सामना किया जा सकेगा। अगर इनके डैडी या तुम्हारे घर वाले कुछ न करें तो साल-छः महीने यों ही चुपचाप गुज़ार दो।"

"यही तो मैं समझाती हूँ इनको, मगर···" सुरजीत ने जान-बूझकर अपनी बात आधी ही रहने दी।

"समझाती हूँ, समझाती हूँ···खुद तो कुछ समझती हो नहीं! अच्छा लगेगा जब हथकड़ी पड़े हुए वापस दिल्ली पहुँचेंगे?" तारक जोर से डाँट-कर बोला। मुझे लगा, उसकी आँखों में जो भाव आ गया है, उसका बाघ वाली कहानी से कोई-न-कोई सम्बन्ध ज़रूर है।

फिर जैसे एकदम सन्नाटा छा गया। सुरजीत पहले चुपचाप बैठी रही। कुछ पल बाद चुपचाप उठकर रसोई में चली गयी। साथ ही दो प्याले उठाती ले गयी। दुबारा आयी और बाकी प्याले, टी-पॉट ले गयी। अभी जो भाव मैंने तारक की आँख में देखा था, वह क्या मेरा भ्रम था?

"तारक, इस तरह भड़कने से कोई फ़ायदा नहीं है।" मैंने सख्त आवाज़ में कहा, "सुरजीत ठीक ही तो कहती है। इस तरह की अनिश्चित स्थिति में कितने दिन काटोगे? कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। यों मेरी या किसी और दोस्त की बैठकों और गद्दियों में कितने दिन निकलेंगे? आख़िर एक लड़की को लाये हो तो किसी ज़िम्मेदारी पर लाये हो या यों

ही ? उसके लिए कोई प्रबन्ध नहीं करोगे ? वह भी तो किसी उम्मीद पर तुम्हारे साथ चली आयी है न···"

"तो दादा, मैंने मना कब किया ?" वह एकदम ठण्डा हो गया। अपने गुस्से पर पछताने के स्वर में बोला, "उसकी कोशिश नहीं कर रहा हूँ, ऐसा नहीं है। कल रेडियो में बात हुई है। आज जाऊँगा।"

"रेडियो में क्या है ?" मैंने पूछा, "बाघ मारने पर कोई टॉक देगा क्या ?"

"ये सितार बहुत अच्छा बजाते हैं। दिल्ली रेडियो पर सालों प्रोग्राम देते रहे हैं। यहाँ कल किसी रेडियो वाले से बातें हुई हैं। हम लोग गये थे।" अन्दर से ही सुरजीत ने इस तरह कहा जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

"तब तो बहुत ही अच्छा है। जब तक स्थायी कुछ न हो, यह तो बहुत सुन्दर रहेगा। आसानी से मिल भी जायेगा। तुम्हारे नाम के आगे जो दत्त लगा है, वह यहाँ और भी काम आयेगा।" मैंने उस वातावरण को तोड़ने के लिए अतिरिक्त उल्लास में कहा, "लेकिन यार तारक, तुमने कभी बताया नहीं···" मन में आया, साला गुणी है।

"अब जरा दिमागी निश्चिंतता मिले तो आपको हम खूब सुनायेंगे। सितार लाने तक का तो होश रहा नहीं। पता नहीं, यहाँ नये सितार पर कितने दिनों में हाथ बैठे···।" वह खिल उठा था कला की बात सुनकर।

नाश्ता सुरजीत ने ही बनाया था। चाय के साथ वही भीतर से प्लेटों में लगाकर भी लायी थी—आलू-गोभी भरे पराँठे और तले हुए टोस्ट··· इन्दु इस बीच अन्दर बैठकर कॉपियाँ जाँच रही थी। फिर वही कल का पारिवारिक वातावरण उभर आया था। मैंने कहा, "सुरजीत, तुम तो बहुत ही कुशल गृहस्थिन हो···तारक को हिन्द-केसरी बना दोगी···" अपने आप शब्द आया, 'शेरमार'। साथ ही ध्यान आया, मेरी बात इन्दु के लिए व्यंग्य बन रही है।

तारक खुश हो गया, "कहाँ मोहनदा, अभी तो टी०बी० का मरीज़ हो रहे हैं। फ़िकर के मारे खाना-सोना कुछ भी अच्छा नहीं लगता।" लेकिन फिर मुग्ध भाव से सुरजीत को निहारकर बोला, "इन्हीं गुणों ने तो मुझे इनका पालतू बना डाला है···जीत, एक दिन बोदी को दोशे बनाकर खिलाओ। बोदी, ये बहुत अच्छे दोशे बनाती हैं···।"

"कहाँ ऽऽ ?" सुरजीत शरमा रही थी।

कुछ देर बाद तारक ने सूचना दी, "बोदी, आज हम लोग बाहर ही खायेंगे। पहले तो गोयल के यहाँ जायेंगे, फिर उसके साथ जगह और काम की तलाश में शायद इधर-उधर दो-एक जगह जाना पड़े···।"

"तो नाश्ता तुम लोग अच्छी तरह कर लो।" मैंने सुबह की बातों का प्रभाव देखने के लिए कहा, स्नेह से।

"मैं तो इन मामलों में शरमाता ही नहीं। आप इन्हें कहिए, यही भूखी रह जाती हैं।" तारक शायद सुरजीत को मना रहा था। उसने खाने के बराबर ही नाश्ता किया था। फिर वे जल्दी-जल्दी कपड़े बदलकर निकल गये थे। दरवाज़े में जब उन्होंने, "अच्छा, शायद शाम को देर से आयेंगे" कहकर विदा ली तो उड़ती टाई और भीनी सेण्ट की खुशबू, सलीके की साड़ी और दोनों की स्वस्थ देह को देखकर लगा—सचमुच, जोड़ी बुरी नहीं है। तारक के हाथ में, सुरजीत के लिखे रात वाले ख़त थे और उसके पास पर्स···सुरजीत ने जाते समय बैठक एकदम साफ़-सुथरी कर दी थी, जाने से पहले सभी कुछ करीने से कर गयी थी।

मैं यों ही बाल्कनी पर आ गया, पास ही तारक के बनियान-मोजे-रूमाल सूख रहे थे। नहाकर निकलते समय सुरजीत बाँह पर लायी थी, उसी ने धोये थे। तारक उस समय शीशा सामने रखे मुँहासों की कीलें निकाल रहा था। मुझे उसके छल्ले वाले काँच याद आए।

कुछ दूर सड़क पर मोड़ लेकर जो टैक्सी स्यालदा की तरफ गयी थी उसमें शायद वही दोनों थे, खुश और गद्‌गद्···

अगले दिन सुबह फिर वही चाय। तारक नहीं था। वह अभी भी बैठक के भिड़े किवाड़ों के ही पीछे था। सुरजीत ने शायद पहले ही बैठक झाड़ दी थी। निकली तो दरवाज़ा फिर सावधानी से बंद कर दिया। चाय भी वही बनाकर लायी थी। पूछा, "तारक सो रहे हैं क्या ?"

"उनके सिर में बहुत दर्द है।" सुरजीत ने गंभीर-भाव से बताया, "रात को देर तक सिर दबाती रही। कल हम लोग बहुत घूमे थे न।"

"कहीं कुछ हुआ ?" इन्दु ने पूछा। मुझे पता था कि अब वह चाहने लगी है कि ये लोग जल्दी से अपना प्रबन्ध कर लें। एक तो हम लोगों की अपनी ज़िन्दगी केवल खाने और सोने वाले कमरों में ही क़ैद हो गयी थी, दूसरे इन्दु मेहमानों से बहुत जल्दी ऊब जाती है।

"थोड़ी देर गोयलजी से बातें हुई थीं। फिर हम लोग गांधीघाट चले गये।"

"कहाँ, सोदपुर ?" मैंने एकदम पूछा। कल ये लोग ग्यारह के आस-पास लौटे थे।

"हाँ, शायद यही नाम है। वहाँ से बैलूरमठ, दक्षिणेश्वर आये सो बहुत ही थक गए। चौरंगी पर खाना खाया। बस, इसी में बहुत देर हो गयी।" सुरजीत हुलसकर कहने लगी, "कलकत्ता अच्छी जगह है। मैंने तो पहली बार देखी है। गांधीघाट बड़ा खूबसूरत बनाया है।"

"हाँ, पहली बार तो सभी शहर बहुत अच्छे लगते हैं। फिर इस पर भी कोई जगह निर्भर करती है कि साथ कौन था।" मैंने परिहास से कहा। आश्चर्य इन्दु को भी हुआ था। जैसी परेशानियों और उलझनों की बातें कल हुई थीं, उनके बीच यह घूमने-मटरगश्ती करने की बात खटकती थीं। अपने को समझाया—परेशानियाँ अपनी जगह हैं, नयी लड़की के साथ ज़िन्दगी बसाने के सपने अपनी जगह। इन्दु कभी अच्छे मूड में हुई तो कहूँगा कि तुम्हें सुरजीत को कम-से-कम एक साड़ी तो देनी ही चाहिए।

सुरजीत ने चाय जल्दी ख़तम कर दी और एक प्याला वहीं से बनाकर तारक के लिए भीतर ले गयी। थोड़ी देर में निकल कर सीधे बादल के पास एक रुपये का नोट बढ़ाते हुए बोली, "ज़रा दो गोली एनासिन की ले आना…।"

"ज्यादा सिर-दर्द है क्या ?" मुझे लगा, तारक के पास उसकी तबीयत पूछने जाना चाहिए।

भीतर गया तो तारक, जमीन पर बिछे बिस्तरे पर ही अधलेटा, एक हथेली पर चाय-कप रखे कुछ सोच रहा था, दूसरे हाथ की उँगली से आँखों की कीचड़ निकालता जाता था। चश्मे के छल्लों पर दरवाजे की चौखटें बनी थीं। जगह छोटी थी इसलिए कुर्सियों को दीवार के सहारे खिसका कर ही बीच में बिस्तरा लगाया जा सकता था। मुझे देखकर पीछे की कुर्सी का सहारा लेकर जरा और उठ आया।

"क्या हो गया तारक ?" मैंने सहानुभूति से पूछा और बिस्तर पर ही बैठ गया। सुरजीत ने इधर-उधर फैले कपड़े समेटकर एक तरफ़ रखी अटैचियों पर रख दिये। अटैचियों के पास और ऊपर तेल की शीशियाँ, कन्धा-शीशा, शेव का सामान और ब्रश-पेस्ट भी रखे थे।

"कुछ नहीं। यों ही रात से जरा-सा सिर-दर्द हो रहा है।" वह अपराधी-सा सुरजीत की ओर देखकर सूखे होठों पर मुस्कराया। "मुझे कभी-कभी हो जाता है। दो एनासीन खा लूंगा, अभी ठीक हो जायेगा।"

"अरे ये तो आप आर्टिस्ट लोगों की ख़ास बीमारी है। मुझे भी लगा कि कोई ख़ास बात नहीं है। सिगरेट जलाकर पूछा, "क्या रहा कल ?"

"गोयल से बहुत-सी बातें होती रहीं। वह तो यही कहता है कि सुरजीत को कुछ दिनों को उसके यहाँ छोड़कर बनारस चला जाऊँ और या तो घरवालों को समझा-बुझाकर लिखवा लूँ कि उन्हें इसमें कोई आपत्ति नहीं है, या सीधे कानूनी रूप से पहले शादी का निपटारा कर लूँ।" उसने मेरी डिब्बी से निस्संकोच सिगरेट निकालकर सुलगा ली। क्या वह सुरजीत से आँखें चुरा रहा था ?

"अगर यह समझ में आता है तो यही कर लो।" मुझे सहसा ध्यान आ गया हो, इस तरह कहा, "और हाँ, मैंने अपने एक जान-पहचान वाले से बातें की हैं। तुम जानते हो, यहाँ का सारा बिजनैस तो मारवाड़ियों के ही हाथों में है। वे लोग निहायत दकियानूसी हैं और दिल्ली की तरह दफ्तरों में लड़कियाँ नहीं रखते। फिर भी एक चाय-कम्पनी है, बागड़ी-टी-ट्रेडर्स। उसमें चिट्ठियाँ-विट्ठियाँ चढ़ाने का काम सुरजीत कर ले तो क्या

बुराई है ? एक तरह से डिस्पैच-क्लर्क की जगह है । डेढ़ेक-सौ दे देंगे। इनका भी मन लगा रहेगा। फिर कोई अच्छी-सी जगह तलाश कर लेंगे।" मैंने डरते से एक कागज उसके सामने कर दिया, "इस नम्बर पर किसी भी समय तुम या सुरजीत हरीश बागड़ी से मिलकर बात-चीत कर लो···।"

सुरजीत शायद सुनने के लिए दरवाज़े पर ही खड़ी हो गयी थी; बोली, "भाई साहब, मुझे तो किसी भी तरह का कोई काम करने में संकोच नहीं है। मैं आज ही बात कर लूँगी।"

"हाँ, यही ठीक रहेगा।" सोचा, लड़की की आवाज़ सुनकर मारवाड़ी ज़रूर पिघल जायेगा। समस्या का हल निकालने की तरह बोला, "तुम बनारस या दिल्ली, जहाँ भी ज़रूरत हो चले जाओ। बाद में इस काम की वजह से इनका मन भी लगा रहेगा। कुछ-न-कुछ तो करना ही होगा। बैठे-बैठे यों भी दुनियाँ-भर की खुराफ़ातें दिमाग़ में आयेंगी···"

तारक कुछ नहीं बोला और छल्ले झलकाता हुआ एक के बाद एक कश लगाता रहा। फिर चश्मा पीछे ठेलकर कहने लगा, "मोहनदा, मैं एक ख़त की राह देख रहा हूँ। दिल्ली में मेरा एक दोस्त है, उसे लिखा है। शादी में वह गवाह भी था। वह उस कॉलेज के प्रिंसिपल से भी मिलेगा। वहाँ तो अब मुझे रखा नहीं जायेगा, लड़कियों का कॉलेज है। मैंने वहाँ आठ साल पढ़ाया है, कुछ प्रोविडेण्ट फण्ड पड़ा है, डेढ़-दो हजार। वह दोस्त जरा कोशिश-वोशिश करके यह रुपया जल्दी भिजवाने की कोशिश करेगा। यह भी लिखेगा कि इनके डैडी आजकल किस फ़िकर में हैं···।"

"आप समझते हैं, डैडी चुपचाप बैठे होंगे ?" सुरजीत ने दरवाज़े में खड़े-खड़े ही बात काट कर कहा, "उस प्रिंसिपल से मिलकर उसे डराया-धमकाया नहीं होगा ? वो इतनी आसानी से वहाँ से रुपया निकलवा लेने देंगे ?"

"वो हमें फाँसी पर चढ़ा देंगे, गोली मार देंगे।" तारक एकदम भड़क कर चीख उठा, "बड़े लाट साहब आये, रुपया नहीं निकालने देंगे ! क्यों नहीं निकालने देंगे रुपया ? उनके बाप का राज है ?"

"तारक इस तरह भड़को मत।" मेरी आवाज़ सख्त हो गयी, "एक

तो फण्ड का रुपया तुम्हें इतनी आसानी से मिलेगा नहीं, अगर इस्तीफा वगैरा बाक़ायदा दिया है तब भी दो-चार महीने लग जाना तो मामूली बात है। उसके आधार पर तुम कोई योजना नहीं बना सकते। दूसरे, तुम समझते हो कि सुरजीत के डैडी तुम्हारे नाम लाख रुपये का चैक भेज देंगे कि लो बेटे, तुमने बड़ा अच्छा काम किया है। ये रुपये लो और मस्ती मारो···?"

"हम तो कुछ नहीं कहते। यही कहती रहती हैं कि वो इन्हें बहुत प्यार करते हैं। आज भी अगर ये लिखें कि मैं तकलीफ में हूँ तो दो-चार हज़ार तो उनके लिए कुछ भी नहीं है।" बची हुई चाय का घूँट भरकर पत्तियाँ वापस प्याले में थूकते हुए वह बोला।

मैं आश्चर्य से घूरता रहा, "आर यू मैड तारक ?" मैंने फिर उसकी आँखों में ग़ौर से देखा।

मगर बात अनसुनी करके सुरजीत ने उद्धत-भाव से होंठ मरोड़कर कहा, "हाँ, मैं कहती हूँ अगर आज लिख दूँ तो लाख नाराज़ी के बावजूद वो मुझे एकदम रुपया भेज देंगे, बाद में भले ही गला काट डालें। मैं मर भी जाऊँगी तो नहीं लिखूँगी ? क्यों लिखूँ ? इसी बूते पर घर छोड़कर आयी थी ?"

"हाँ, हाँ, दो गुण्डे पकड़कर हमें छुरा मार दें और हुगली में फेंक दें, आप तो इसलिए आयी थीं।" विकृत-स्वर में तारक बोला। एक बार सामने खड़ी सुरजीत को गुस्से से घूरा और फिर सिगरेट के गुल को ताकने लगा। उसकी कोरों में अटकी सफेद बूँदें बड़ी-बड़ी लगने लगीं।

मैं विक्षुब्ध हो आया। ये सब क्या हो रहा है ? – "तारक, इन सारी बातों में कुछ भी नहीं रखा है। जो स्थिति है उसका सामना करो। उस पर सोचो। इस लड़ने-भिड़ने में तुम आपसी सद्भाव ही खत्म करोगे। मैं फिर कहता हूँ कि समस्या सीधी-सादी यही है कि पहले रहने की जगह, इनकी या अपनी नौकरी और फिर धैर्य और साहस से समस्या को सुलझाना। तुम्हें बनारस-दिल्ली भाग-दौड़ लगानी पड़ सकती है, इसलिए अच्छा यही हो कि पहले इनकी नौकरी का कोई इन्तजाम कर लो।"

"यही मैं इनसे कहती हूँ भाई साहब, लेकिन पता नहीं क्या हो जाता

है। जब देखो तब उठाके डैडी को कोसने लगते हैं। अरे डैडी जैसे हैं मैं अपने-आप भुगत लूँगी। तुम रहने और नौकरी का कुछ इन्तज़ाम करके अपने बनारस फ्रण्ट को सँभाल लो।" फिर मेरी तरफ़ देखकर निश्चय से बोली, "मैं आज ही मि० बागड़ी से बातें करूँगी। कम-से-कम रहने-खाने की तो फ़िक्र मिटे।" और वह झमककर अन्दर चली गयी। शायद जाकर पूछने लगी कि नाश्ते में क्या बनेगा।

मुझे जल्दी ही ऑफिस जाना था। "बागड़ी से ज़रूर बातें कर लेना।" कहकर मैं बिना तारक की ओर देखे जल्दी से निकल आया। नाश्ते पर भी तारक नहीं आया, सुरजीत ने भीतर ही ले जाकर दे दिया। उसके संजीदा और तने चेहरे से लग रहा था कि कुछ और भी बातें हुई हैं।

शाम को हमें बाहर ही एक दोस्त के यहाँ खाना था। इन्दु ने रास्ते में इतना ही बताया कि दोनों नहा-धोकर खा-पीकर गये हैं और शाम के लिए मना कर गये हैं। शायद, जान-बूझकर उसने इस बारे में अधिक बातें नहीं कीं। लौटते हुए कहा, "इन शर्मा लोगों को भी अपने यहाँ खाने पर बुलाना है। दो बार हम इनके यहाँ हो आये हैं।"

"इन्हीं दिनों बुला लो। सुरज़ीत भी मदद कर देगी। बहुत अच्छा खाना बनाती है। एक तरह से तो यह बहुत सुविधाजनक रहेगा।" मैं जान-बूझकर सुरजीत की और तारीफ़को दबा गया। घर के बाहर जब मैं उसके बारे में सोचता तो घर के कामों में हिस्सा बँटाते हुए इधर-उधर घूमती हुई उसकी तसवीर ही मन में आती और अच्छा लगता, जैसे छोटे भाई की बहू आ गयी हो।

"बुला लो। लेकिन उठने-बैठने की जगह कहाँ है?" कुछ चिढ़कर इन्दु ने कहा, "वही एक बैठक है सो उसमें इनका सामान रखा है।"

मैं कहना चाहता था कि सामान एक दिन को अपने कमरे में रखा जा सकता है। लेकिन यह न कहकर हल्के ढंग पर जवाब दिया, "दो-चार

दिनों में ठीक हो जायेगा यार, ऐसी बातों में चार-छः दिन तो लग ही जाते हैं। ये लोग यों तो ज़िन्दगी काट नहीं सकते । कुछ-न-कुछ इन्तजाम तो करेंगे ही ···।" लेकिन इन्दु के कसे हुए होंठ देखकर बात वहीं छोड़ दी।

अगले दिन भी सुबह तारक नहीं निकला। ज़रा-सी देर को सुरजीत बाहर आयी, यह बताने कि तारक को हल्की हरारत है और वह अन्दर बैठी उसका सिर दबा रही है। बादल ने चाय बना दी थी। अपनी और तारक की चाय वह अन्दर ही ले गयी। किवाड़ वापस बंद कर दिये। मैं चुप-चाप अखबार देखता चाय पीता रहा, इन्दु गंभीर भाव से स्वेटर बुनती रही। रात को भी ये लोग काफ़ी देर से आये थे। हम लोगों को ही आते-आते दस बज गये थे। मैं देर तक जागता रहा कि ये आ जायें तभी सोने जाऊँ। फिर बादल से दरवाज़ा खोलने को कहकर भीतर जाकर सो गया। आज भी सोते-सोते अचानक नींद टूट गयी थी। कुछ देर बाद समझा कि दोनों में कुछ कहा-सुनी हो रही है। शायद तारक ही डाँट रहा था। कुछ देर चुपचाप सुनने की कोशिश करता रहा, जब पूरी बात समझने के इरादे से पानी पीने बाहर निकला तब तक वे शान्त हो गये। सुबह सुरजीत के चेहरे पर मैं रात के झगड़े के चिह्न देखने की कोशिश करता रहा।

आज भी काफ़ी देर इन्दु राह देखती रही कि शायद रोज़ की तरह सुरजीत आकर नाश्ते के लिए पूछेगी कि क्या बनेगा। कुछ देर बाद उसने बादल से ही नाश्ता बनाने को कह दिया। नाश्ता अन्दर ही भेज दिया गया। बादल लेकर गया था। तारक ने उससे तभी कहा था कि आकर कमरा साफ़ कर जाये। दस गज के फ़ासले से ज़ोर से बोली गयी सारी बात सुनायी देती थी।

शाम को लौटकर पाया कि इन्दु और सुरजीत खाने की मेज़ पर बैठी बातें कर रही हैं। उसे देखते ही मुँह से निकला, "अरे, तुम शाम को यहाँ? तारक कहाँ है?"

"मैं तो अभी आधा घण्टा पहले आयी हूँ। वे अपने दोस्तों के साथ कहीं गये हैं।" मुस्कराकर सुरजीत ने बताया। मन में आया, रात के झगड़े की बात अब पूछ लूँ ?

मैं सीधा अन्दर गया। कपड़े बदले, मुँह-हाथ धोकर जब मेज़ पर आया तो रसोई से सुरजीत ट्रे में चाय और मठरियाँ लिये निकल रही थी। चाय की इच्छा भी थी। गरम चाय की घूँट गले में गयी तो विनोद से इन्दु से कहा, "सुरजीत के आने से तुम तो एकदम नवाब साहब हो गयी हो ···मेरे लिए चाय-वाय बनाना भी अब इसी का काम है ?"

"तो क्या हो गया ? मेरी छोटी बहन नहीं है यह !" स्नेह से उसे निहारकर इन्दु बोली। लगता है आज मूड कुछ ठीक है। "अपना घर है। काम करती है तो क्या हो गया ?" उसने सुरजीत के कंधे पर हाथ रख दिया, "क्यों जीत ?"

"भाई साहब, दिल्ली में तो मैं ही सारा घर देखती थी और कोई था ही नहीं। भाभी को आये दो-तीन साल हुए होंगे। फिर भी अभी तक डैडी का सारा काम तो मेरे ही ज़िम्मे था। उन्हें और किसी के हाथ का काम पसंद ही नहीं आता। रूमाल भी लेना होता था तो आवाज़ देते, 'जीत', अक्सर कहते थे कि जब तू चली जायेगी तो मैं अनाथ हो जाऊँगा। ज़िम्मेदारी भी क्या रहेगी तब। पहाड़ पर एक छोटी-सी कॉटेज लेकर ज़िन्दगी गुज़ार दूँगा। अब पता नहीं, क्या हालत हो रही होगी ? गुस्सा चाहे जितना तेज़ हो, लेकिन एक बात मैं जानती हूँ कि आज भी सामने जाकर खड़ी हो जाऊँ तो एक शब्द नहीं बोल सकते···।" उसकी बड़ी-बड़ी गुलाबी आँखों की निचली कोरें पानी से डबडबाकर भारी हो आयीं।

इन्दु ने प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रखकर पल्ले से आँखें पोंछ दीं। समझाया, "ये सब क्या है जीत, पगली कहीं की। अरे बाप का दिल तो बाप का ही है। बच्चे चाहे जो कर लें। दो-चार महीने में सब ठीक-ठाक हो जायेगा तो तुम अकेली दिल्ली चली जाना। खुश हो जायेंगे।" लगा, अपने माँ-बाप के ध्यान से खुद उसका गला भर आया।

"आज भी जो उनका खत आया है उसमें लिखा है कि 'अगर तुम

चाहो तो बेधड़क चली आओ। मैं तुम्हें माफ़ कर दूँगा। लेकिन उसका मुँह भी नहीं देखना चाहता। उसने इतनी गैर-ज़िम्मेदारी का काम किया है कि उसे गोली मार दी जानी चाहिए। तुमसे शादी करनी थी तो पहले अपनी पुरानी शादी का झंझट खत्म करता···' फिर लिखा है कि 'लेकिन उसमें इतनी उलझनें हैं कि एकाध साल वह मामला सुलटेगा नहीं, और इस आदमी में इतना गुर्दा नहीं है कि घर जाकर कुछ तय करे···तुम्हारी इस शादी का कोई अर्थ नहीं है, यों ही 'दत्त' अपने नाम के पीछे लगाने से कहीं शादियाँ होती हैं। तुम्हें अच्छा लगेगा कि चार साल बाद तुम पाओ, तुम्हारे दो बच्चे हैं और तुम्हारी हैसियत एक रखैल से बेहतर नहीं है?' यही सब लिखा है। रुपये की बात भी लिखी है कि अगर तुम्हें कोई दिक्कत हो तो उस पते पर जाकर रुपये ले सकती हो, चाहो तो वहाँ खुद तुम अकेली जाकर रह सकती हो, उस बदमाश के साथ बिल्कुल भी नहीं। उसकी ख़बर तो मैं लूँगा···।"

"ये सब लिखा है?" मैंने मन-ही-मन सरदार की तारीफ़ की। आदमी निगाह वाला लगता है। बाप का दिल और अनुभवी आँखें हैं। अचानक ख़याल आया तो पूछा, "यह ख़त कहाँ आया? तुमने खुद पत्र लिखा था उन्हें?"

इस बार सुरजीत हिचकिचायी। सोचकर बोली, "मैंने लिखा था···" फिर सुधारा, "इन्होंने लिखाया था।"

अनचाहे ही मुझे गुस्सा आ गया, "क्यों लिखवाया था? और तुमने लिखा क्यों? यह बताने के लिए कि तुम लोग यहाँ हो कलकत्ते में? कहाँ तो मरा जा रहा था कि अगर उन्हें पता चल गया तो मेरे पीछे गुण्डे लगा देंगे और कहाँ जाकर खुद उन्हें ख़बर देते हैं कि आप यहाँ तशरीफ रखते हैं! सचमुच सुरजीत, मेरी समझ में नहीं आता कि तुम लोग आखिर कर क्या रहे हो? अगर तुम्हें बनारस का झंझट सुलटाना है तो पहले उसे सुलटाओ। तुम लोगों की परेशानी देखकर मुझे सचमुच दुख होता है। मैं इस दिमाग़ी टेन्शन की कल्पना कर सकता हूँ। तारक तुम्हारे डैडी से चाहता क्या है? रोज़-रोज़ का यह बुखार और सिर-दर्द क्या इस स्थिति को यों खींचने से कम हो जायेंगे?" मुझे ध्यान आया कि पहले

भी मैंने कभी कहा था कि क्या तुम चाहते हो इनके डैडी तुम्हें लाख रुपयों का चैक भेज दें ? मुझे उनकी लड़ाई वाली बात याद आयी ।

"मुझे तो सच्ची, इस लड़की पर दया आती है ।" इन्दु बोली, "और तारक क्या खुद कम परेशान है ? चेहरे से नहीं लगता ?"

"भाभी, रात-भर नहीं सोते । चुपचाप पड़े-पड़े सोचते रहते हैं। अक्सर कहते हैं कि सिर में दर्द हो रहा है । गर्मी लग रही है । फुलस्पीड पंखे में भी चैन नहीं आता।" मेरे गुस्से से सुरजीत एकदम सहम गयी थी । इन्दु की बात सुनकर चिन्ता से बोली, "पैसे अलग खत्म हो गये हैं। खैर, उसकी तो कोई बात नहीं है ···मेरी घड़ी-चूड़ियाँ बेचकर आ जाएँगे और क्या, ऐसे ही मौक़ों के लिए तो होती हैं ये चीजें । लेकिन सच भाभी, मुझसे तो इनकी यह हालत नहीं देखी जाती । कल हम लोगों ने बाहर ही खाना खाया था। सिनेमा से निकले तो सरदारजी की टैक्सी में ही न बैठें। कहें कि दिल्ली से तुम्हारे डैडी का भेजा हुआ आदमी हो सकता है। हो सकता है इसने हमें सिनेमा जाते हुए देख लिया हो और बाहर खड़ा इन्तजार कर रहा हो। कहीं अकेली-दुकेली जगह ले जाकर टैक्सी रोक दे । कह दे कि खराब हो गयी है। फिर छुरा निकालकर मुझे तो गड्ढे में फेंक-फाँक दे और तुम्हें लेकर चलता बने । मैंने बहुत समझाया कि यह कैसे तय हो गया कि सारे सरदार मेरे डैडी के ही आदमी हैं ? कलकत्ते में तो एकाध टैक्सी किसी और के पास होगी, बाकी तो सरदार ही चलाते हैं । फिर यों हम कहाँ तक बचेंगे ? मैंने तो यह भी कहा कि अगर टैक्सी वाला सरदार है तो मैं भी सरदार की बेटी हूँ, इतनी आसानी से कुछ नहीं कर पायेगा । लेकिन नहीं, जनाब हिल कर ही नहीं दिये···आखिर किसी दूसरे की टैक्सी में बैठ कर आये ।"

हुँह, तो यह समस्या का हल कर रहे हैं शेर-मार साहब ! विक्टोरिया मैमोरियल, ज़ुआलौजीकल गार्डन, सिनेमा···और हम साले यहाँ बेकार परेशान हैं । और मुझे लगा कि अगर मैं वहाँ से उठ नहीं जाता तो आपे से बाहर होकर पता नहीं क्या-क्या बकना शुरू कर दूँगा । मैं भीतर जाकर लेट गया और सिगरेट पीने लगा । फिर लगा, लेटा नहीं जायेगा। उठकर इस तरह बाहर आ गया जैसे कुछ याद आ गया हो । पूछा, "और

तुमने बागड़ी से बातें कीं ?"

अपराधी-भाव से सुरजीत ने सिर झुका लिया, "जी···नहीं।"

"क्यों ? नहीं करनी नौकरी तो पहले कह देतीं। दूसरे की पोजीशन ख़राब क्यों करती हो ? तुम लोगों का यही रवैया रहा तो मैं आगे बात कैसे कर सकता हूँ ?"

जवाब दिया इन्दु ने, "तारक कहते हैं कि वहाँ आदमियों के बीच में सुरजीत नौकरी करे, यह उन्हें पसन्द नहीं। इनसे कहा, 'तुम सुन्दर लड़की हो, हो सकता है तुम्हारे बॉस का ही मन आ जाये, मैं तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि आठ घण्टे बिना देखे रह नहीं सकता···।"

"नोन्सैन्स !" मुझे लगा कि अब किसी भी तरह अपने पर नियंत्रण नहीं रखा जायेगा। जैसे-तैसे गुस्सा घूँटकर कहा, "कलकत्ते में जो लाखों लड़कियाँ काम करती हैं, सबके बॉस उन पर दिल ही रखते होंगे ? सच कहता हूँ सुरजीत, मुझे डर है कहीं इस आदमी का दिमाग तो नहीं खराब हो गया ? प्यार करते हैं तो मन्दिर में बैठकर चौबीस घण्टे चेहरा देखा करें···।"

"यही अनिश्चय की स्थिति रही तो पाँच-सात दिनों में जरूर हो जायेगा।" इन्दु ने दिमाग ख़राब वाली बात का जवाब दिया।

"नहीं भाभी, ये बात तो वे शुरू से कहते हैं कि तुम्हें आदमियों वाली जगह नौकरी नहीं करने दूँगा।" सुरजीत ने अनुपस्थित तारक का बचाव करते हुए कहा, "कहते हैं, तुम खूबसूरत लड़की हो। मुझे हमेशा डर लगा रहता है कि कोई तुम्हें मुझसे छीन न ले। तुम्हारे बिना अब मैं अपनी जिन्दगी की कल्पना नहीं कर सकता। यहाँ तक कि जब हमलोग गोयलजी की गद्दी में थे और उनके यहाँ खाना खाने गये तो कहकर जबर्दस्ती इन्होंने मुझसे उनके राखी बँधवायी।"

"हद है !" मैंने घृणा से कहा। आगे कुछ और सोचूँ कि इन्दु पूछ बैठी, "इसीलिए तो तुम मुझे दीदी न कहकर भाभी कहती हो जिससे इन्हें भाई साहब कह सको···" फिर वह खूब खुलकर हँसी और उसके गले में बाहें डालकर बोली, "इनसे तुम भले ही भाई साहब कह लो, लेकिन मैं तो तुम्हें छोटी बहन ही मानूँगी। सच, तू तो जीत मुझे एकदम अपनी छोटी

बहन ही लगती है...।" सुरजीत की आँखों में शायद कृतज्ञता के आँसू आ गये।

"दिल्ली में रही हुई पंजाबी लड़की को इस तरह ताले में बंद करके रखेगा तो चल ली ज़िन्दगी !" मैंने ऊपर से कहा। लेकिन लगा कि शायद इन्दु की बात ही सच है—मुझे 'भाई साहब' कहना शायद इतना बेतुका नहीं लगता जितना इन्दु को 'भाभी' कहना। और अगर भाई साहब कहने के पीछे भी कुछ इसी तरह की मंशा है तो निहायत ही अपमानजनक है। मेरे कान लाल हो आये। पूछा, "रेडियो गया था ?"

"नहीं।" सुरजीत ने इन्दु की बाँह हटने पर दोनों कानों से उलझे बालों को हथेलियों से ठीक करते हुए सिर हिलाया।

मैं तो पहले ही जानता था। थोड़ी देर कुछ नहीं बोला। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कह या कर डालूँ। भरसक स्वर को नरम करके समझाने के लहज़े में बोला, "देखो सुरजीत, शायद तारक की तो समझ में नहीं आ रहा कि उसे क्या करना चाहिए, क्या नहीं। उसका दिमाग़ काम नहीं कर रहा। लेकिन तुम प्यार से उसे समझाओ। यहाँ आये उसे दस-पन्द्रह दिन हो गये, मैं पूछता हूँ, उसने क्या किया ? स्थिति जो पहले दिन थी, वही आज भी है। न उसने रहने के लिए जगह ढूँढ़ी, न नौकरी का इन्तजाम किया। उसे यही शक है कि कोई तुम्हें बहका लेगा तो अपने ही लिए कुछ कर लेता। इस तरह तुम कब तक दूसरों के यहाँ पड़ी रहोगी ? कितने दिन इस तरह निकलेंगे ? कलकत्ते-बम्बई में न तो किसी के पास इतनी जगह है कि एक फ्लैट अपने लिए और एक आपके लिए अलग कर दे, न इतनी आमदनी होती है कि चार आदमियों को महीने-दो महीने खिला सके। इन शहरों की हालत तो तुम जानती हो। सौ रुपये का नोट आज निकालो, परसों उसका पता नहीं चलता। मैं अपनी बात नहीं कर रहा, लेकिन यह समस्या का हल तो नहीं है। इस तरह कब तक टलेगा ? और इस सारे में जो सबसे चिन्ताजनक बात मुझे लग रही है कि तुम दोनों के आपसी सम्बन्ध दिन-पर-दिन खराब होते चले जा रहे हैं। जिन सम्बन्धों के आधार पर तुमने यह कदम उठाया है वही ज़िन्दगी की शुरूआत में कटु हो जायेंगे तो आगे क्या रह जायेगा ? वैसे तो आज इस

तरह के कामों में कोई कॉज और आदर्श जैसी बात रह नहीं गयी है और अगर कुछ बची भी हो तो यह सब देखकर लोगों की आस्था इसमें रह जायेगी ? तुम अपनी चूड़ियों और घड़ी से दस-बीस दिन और निकाल दोगी, लेकिन फिर ? दोस्त लोग दो आदमियों का रहने-खाने का खर्चा बर्दाश्त कर लें, यही बहुत है। उनसे यह उम्मीद भी की जाये कि पचास रुपये निकाल कर दे देंगे, सो मुझे संभव नहीं लगता। इसलिए नहीं कि कोई किसी की मदद नहीं करना चाहता, लेकिन हरेक की स्थिति भी तो देखो…"

सहसा मैं चुप हो गया। कहीं बहुत ज्यादा तो नहीं कहता चला जा रहा हूँ ? बात बीच में काट कर सोचता रहा। फिर पूछा, "अच्छा, उसकी बात छोड़ो, तुम अपनी बात बताओ, तुम क्या सोचती हो ? तुम्हें यह ज़रूरी नहीं लगता कि कहीं नौकरी करो ?"

"ज़रूर लगता है भाई साहब, शुरू से लगता है।" उसने दृढ़ता से जवाब दिया, "अब तो और भी लगता है। यह रोज-रोज़…"

"तो ज़रा मजबूत होकर स्थिति का सामना करो । मैंने आज दूसरी जगह बातें की हैं। तुम कहो तो कल बात और आगे चलाऊँ। लड़कियों के स्कूल में शायद एक जगह निकल आये, ऐसी कुछ बात किसी के ज़रिए हो रही है। मेरी तो यही सलाह है कि बिना तारक की चिन्ता किये, तुम उस नौकरी को ले लो। मिले चाहे कम ही, लेकिन कुछ न सही तो किराया तो निकलेगा रहने का। और ये बेकार की बातें भी दिमाग़ में नहीं आयेंगी। बाकी रही तारक की समस्या, सो जैसे वह चाहे उसे हल करने दो।"

और मैं उठकर भीतर आ गया। मुझे हर क्षण लगता रहा कि शायद इतनी बातें और इस तरह नहीं करनी चाहिए थीं…सुरजीत अच्छे घर की है, सैंन्सेटिव है, उसे यह सारी बातें चुभ सकती हैं…ग़लती हो गयी ?

तभी इन्दु ने आकर फुसफुसाते हुए कहा, "सुरजीत बैठक में जाकर रो रही है।" मैंने अफ़सोस से कहा, "क्या करूँ इन्दु, मुझे तारक पर गुस्सा आ गया था। इस लड़की को बेकार परेशान कर रहा है, रात-रात भर लड़ता-डाँटता है। तुम ज़रा जाकर प्यार से उसे समझा दो कि इन बातों

का बुरा न माने, प्लीज़ ! मेरी तरफ से माफ़ी माँग लेना···"

"गुस्सा तो मुझे भी सच, इस आदमी पर बहुत आ रहा है। एक तो यह सब किया और अब लेकर उसकी ज़िन्दगी बिगाड़े दे रहा है। लेकिन आपको इतनी सख़्त बातें नहीं कहनी चाहिए थीं···एक तो बेचारी यों ही असहाय महसूस करती होगी···" वह जाते-जाते कहती गयी, "और देखो, खाना खाते वक्त तारक से कुछ भी मत कहना···खुद भी कुछ-न-कुछ तो कर ही रहा होगा बेचारा···।"

इन औरतों के दिमाग़ को भी समझना मुसीबत है। एक साँस में गुस्सा और दूसरी में यह हिदायत···फिर भी इन्दु का बड़प्पन अच्छा लगा। नल अच्छी तरह शायद बंद नहीं किया गया था। इसलिए ग़ुसलख़ाने गया तो देखा कि एक कोने में कुछ भीगे कपड़े रखे हैं। सुबह के कपड़े धुले नहीं हैं क्या ? झुककर एक कपड़ा उठाया। तारक का बनियान था, नीचे चड्ढी और दो रूमाल···लाट साहब यहाँ पटक गये हैं। पहले ख़्याल आया कि उठाकर बाहर गली में फेंक दूँ, फिर कुछ सोचकर नल के नीचे धो डाला। शायद इन्दु की निग़ाह नहीं पड़ी है। देखेगी तो तारक के प्रति सारी हमदर्दी हवा हो जायेगी। चोरों की तरह निकलकर बाहर अलगनी पर फैला दिये।

खाते समय ख़याल आया कि मुझे सुरजीत से पूछना तो चाहिए था कि ख़त उसने आख़िर क्यों लिखा ?

अगले दिन न तारक बाहर निकला, न सुरजीत। सुरजीत ने बादल को आवाज़-भर दी, "बादल, हम लोगों की चाय यहीं दे जाना।" मैं चुपचाप बैठा अख़बार पढ़ता रहा। कहूँ, कोशिश करता रहा, कान बैठक में ही लगे थे। सख़्त और किसी क़दर बुसा हुआ चेहरा ओढ़े बादल मेज़ पर रखी चाय से ही दो कप बनाकर भीतर ले गया। अन्दर जाने के लिए दरवाज़ा खुला तो बिछे हुए बिस्तर के किनारे चादर में ढँके दो बड़े-बड़े पाँव

ही दिखायी दिये। सुरजीत शायद कुर्सी पर बैठी थी। बादल बाहर आने लगा तो कहा, "जब खाली हो जाओ तो कमरा साफ़ कर जाना।" बादल ने कसे हुए होठों को झटका दिया। कहीं साला शाम को ही अपना हिसाब माँगने न चला आये···।

तारक मुझसे कतरा रहा है क्या? सामने क्यों नहीं पड़ना चाहता? मुझे यह क्यों नहीं बताता कि स्थिति क्या है और ये लोग अब क्या सोच रहे हैं? बड़ी कसमसाहट महसूस होती रही।

कल रात को तारक भी जल्दी ही आ गया था, नौ बजे हम लोग खाने ही बैठे थे। बहुत थका लस्त-सा, चेहरा बुझा हुआ और परेशान, आँखें लाल। मुझे दया आयी, सचमुच गरीब दुखी है।

"लो साहब बहादुर भी आ गये···" मैं सायास उल्लास और स्वागत से बोला। शायद सुरजीत से कही हुई अपनी बात का प्रतिकार कर रहा था। "बड़े हैरान परेशान से हो, क्या बात है बन्धु?

"यों ही···।" उसने सूखे होठों पर जीभ फेरकर सुरजीत की तरफ़ देखा। गला साफ़ करके बताया, "ये आज पहले ही चली आयीं। हम वहाँ गोयल और उसके वकील दोस्त के साथ बालीगंज की तरफ चले गये···।" उसने चश्मा उँगली से पीछे ठेला।

"ठीक है, पहले मुँह-हाथ धो लो, देखो क्या चेहरा बना लिया है।" मैंने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उठाते हुए कहा। चश्मे के काँचों पर धूल की मोटी परत मुझसे सही नहीं जा रही थी। उसने बैठक में जाकर कोट-टाई कुर्सियों पर फेंके और तौलिया लिए हुए वॉश-बेसिन की तरफ चला गया। शायद उसे पता भी नहीं चलेगा कि सुबह अपने कपड़े गुसल-खाने में डाल गया था और मैंने धोये थे। देर तक गला साफ़ करने और मुँह पर छींटे मारने की आवाज़ आती रही। आस-पास की सारी ज़मीन गीली करके आयेगा। खाना सामने रखे सुरजीत उसकी हर गतिविधि को तोल रही थी। हम न होते तो शायद उसके चेहरे-बालों पर हाथ फिराकर सारी थकान दूर कर देती। शायद सूँघ रही थी कि मूड कैसा है।

तौलिया से मुँह और कान पोंछता हुआ वह सीधे ही खाने की मेज़ पर आ बैठा। कानों पर चश्मा ठीक करते हुए खिसियाने ढंग से मुस्कराता

बोला, "हमने तो सोचा था कि उधर ही कहीं खा लेंगे, लेकिन श्रीमतीजी बीच में ही मचल गयीं कि घर जायेंगे···।"

किस बात की श्रीमतीजी ? मैंने मन में उसकी बात काटी। दूसरा ख़्याल आया कि यह मेरे संस्कार हैं जो बिना बाक़ायदा विवाह के यह 'श्रीमतीजी' शब्द मुझे खटकता है। मैं सीधे उसके चेहरे को देख रहा था। सिर के पीछे बैठक में व्यर्थ ही बिजली और पंखा चल रहे थे। हो सकता है तारक को ही ख़्याल आ जाये और वह स्विच ऑफ कर दे।

"आप लोग शाम को यहाँ इसलिए खाना नहीं खाते कि हमें दिक्कत होगी ?" इन्दु इतनी देर बाद उसे देखती हुई बोली। वह भी शायद तारक को तोल रही थी और दयालु हो आयी थी।

"नहींऽऽऽ।" उसने मरे ढंग से प्रतिवाद किया, "यों ही जब उधर होते हैं तो खा लेते हैं।"

लगा, इन्दु की बात ठीक है। बैठक की तरफ शायद इसका ध्यान जायेगा ही नहीं। मैं उठते हुए बोला, "कमाल करते हो तारक, हमें क्या दिक्कत ? खाना हमें तो बनाना नहीं पड़ता। और दो आदमियों के खाने में दिक्कत ही क्या है ? ख़बरदार जो आगे से इस तरह की बात सोची। जब तक हो, घर की तरह रहो। उधर कोई काम हो और रुक गये तो बात दूसरी ही है···अरे तारक, आगे यही बातें याद करने को रह जायेंगी···।" मैंने गहरी साँस ली। बैठक में जाकर मैंने दोनों स्विच ऑफ कर दिये। लौटकर कहा, "इन्हीं बातों पर हम हँसा करेंगे···"

तारक कह रहा था, "नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। हम लोगों का कोई टाइम तो रहता नहीं है न, पता नहीं किस वक्त किधर हों। बस, इसीलिए मना कर जाते हैं। अरे, अरे, हम ही उठकर ऑफ कर देते···।" मैं लौटा तो उसने माफ़ी के अन्दाज़ में कहा। फिर सुलह-भाव से पूछा, "कहिए, तबियत कैसी है ?" सवाल सुरजीत की तरफ़ देखकर किया गया था।

ग्रास मुँह में रखते-रखते सुरजीत हँस पड़ी। नाराज होकर आयी थी शायद, अब झेंप गयी।

"गुस्सा होकर भाग आयी थी क्या, यह तुमने यहाँ आकर बताया

नहीं ?"

"नाराज नहीं होऊँगी भाई साहब ?" सुरजीत इठलाकर बताने लगी, "गोयलजी के यहाँ चाय पी रहे थे, उनके वो एडवोकेट दोस्त भी थे, उनकी पत्नी, गोयलजी की पत्नी, बहन और जाने कौन-कौन। फिर यही सारी बातें होने लगीं। सच कहूँ, मैं तो इन बातों से बहुत ही ऊब गयी हूँ। वो सब मिलकर मुझे समझाने लगे कि मुझे डैडी के पास दिल्ली ही लौट जाना चाहिए। दो घण्टे वो औरतें मिलकर मुझे उपदेश देती रहीं कि भले घर की लड़कियों को किस तरह रहना चाहिए, किस तरह माँ-बाप की इज्जत उनकी इज्जत होती है। कैसी-कैसी मुसीबतों से माँ-बाप पालते हैं। यह भारतीयता के खिलाफ़ है और विलायतों की नकल से कॉलिज में पढ़ने वाली लड़कियों का दिमाग़ किस तरह बिगड़ गया है। अब मुझे जाकर डैडी से माफ़ी माँग लेनी चाहिए। ग़लती सभी से हो जाती है, लेकिन उसे सुधारा जा सकता है। कहने लगीं कि मुझे देखकर कैसे सीधी साधी बहू-बेटियों पर खराब असर होता है और कितना नीच काम मैंने किया है। वहाँ सबके सामने बैठकर क्या-क्या उन लोगों ने नहीं कहा और ये थे कि चुपचाप गुटर-गुटर सुने जा रहे थे। ऊपर से कहते हैं कि बनारस जाऊँगा तो गोयल के यहाँ रह लेना···मैं उस घर में अब झाँकूँगी भी नहीं।" उसने रुँआसे स्वर में बताया।

तारक खिलखिलाकर हँस पड़ा, "इतने लोगों के सामने हम क्या कर सकते थे भाभी जी ? हम तो मजा ले रहे थे। सोच रहे थे कि सुरजीतजी मन-ही-मन कैसी भुनभुना रही होंगी···बड़ा आनंद आ रहा था।"

"आनंद आ रहा था ! मैं अभी से कहे देती हूँ कि मैं यहाँ रह लूँगी, अकेली कमरा लेकर रह लूँगी, लेकिन उस घर में आगे से जाने को कहकर देख लेना, मुझसे बुरा कोई नहीं होगा···।" सुरजीत ने घोषित कर दिया।

मैं मुक्त भाव से हँस पड़ा···बच्चे हैं दोनों···कहाँ इन लोगों ने अपने को इस मुसीबत में डाल लिया···।

"अरे हाँ, तुम बिल्कुल मेरे यहाँ रहो···" इन्दु ने अभय दे दिया।

"इन्हें तो दुनिया रखने को तैयार है बोदी, हमीं सबको इल्लत लगते हैं।" हँसता हुआ तारक मुग्ध आँखों पर बल्ब चमकाता उसे निरखता रहा।

दोनों रह-रहकर आपस में एक-दूसरे को शिकायत-रीझ से देख अधिक रहे थे, बातें कम कर रहे थे । भारी फ्रेम का छल्लेदार चश्मा लगाये मुग्ध और गद्-गद् आदमी खासा चुगद दिखाई देता है । उस वक्त तो और भी जब चश्मा बार-बार नाक पर सरक आता हो ।

मैंने उसकी बात का जवाब दिया, "अपनी निर्णय-दुर्बलता के कारण ।"

"मोहनदा, हम तो मानते हैं कि हम निर्णय-दुर्बल हैं । हमसे कुछ भी तय नहीं हो पाता । वह तो पता नहीं कैसे शेर को मार लिया, लेकिन हम बहुत डरपोक हैं । मगर ये तो बहुत साहसी और मजबूत हैं, यही निर्णय ले लें···आप ही कोई निर्णय ले दीजिए···" तारक ने प्रसन्नता से सारे हथियार डाल दिये ।

मैं मुस्कराया, "निर्णय तो तुम्हें ही लेना होगा तारक, इस तरह भागने से काम चलेगा नहीं मित्र ।" तीन-चार दिनों के तनाव के बाद उन दोनों का इस तरह खुश होना हम लोगों को भी अच्छा लग रहा था । मैं जान-बूझकर इस तरह के संकेतों और प्रसंगों को बचाना चाहता था जिनसे कटुता की नोकें सिर उठाने लगें···वरना कहने को मन तो हुआ कि तुम निर्णय लो या न लो, लेकिन सुरजीत को ऐसी जगहों पर मत ले जाओ, जहाँ यह महसूस करे कि वह अपराधी है और उसने कोई ग़लत काम किया है । वे जिस सांकेतिक भाषा में एक-दूसरे को निहाल हो-होकर रूठ-मना रहे थे, इशारे और शिकायतें कर रहे थे, उनसे पहली बात मन में यही उठती थी कि साला तारक आज की रात ज़रूर सारी शिकायतें दूर कर देगा । लेकिन मुझे ईर्ष्या तो नहीं हो रही कहीं ? सुरजीत के भरे शरीर को देखकर मैंने अपने को टटोला—ईर्ष्या नहीं, कहीं संतोष और सान्त्वना का ही अहसास हो रहा है—विचार कौंधा, कभी इन लोगों के कोई संतान हुई तो निश्चय ही जीनियस होगी, बंगाली दिमाग़ और पंजाबी शरीर··· क्रॉस-ब्रीड···सोते-सोते मैं सोचने लगा—इन लोगों के आजाने से 'उधर' के कितने शब्द सुन रहा हूँ । लगता है, वे सब जीवन में रह ही नहीं गये हैं । इल्लत, डौल, सुलटाना···ये तो सब दिमाग़ से उतर ही चुके थे । इन लोगों के मुँह से लौटकर ये शब्द कैसे भरे-पूरे का अहसास देते हैं । धुँधले-धुँधले वे अवसर और स्थान याद आने लगे जहाँ कभी इन शब्दों का साथ

रहा था। पहली बार लगा, शब्द जीवन के टुकड़े होते हैं, निर्जीव भाषा की इकाई नहीं···। वह ज़िन्दगी अब बहुत पीछे छूट गयी है। कभी उधर गया तो अनजाने इन टुकड़ों की ही तलाश करूँगा···जब पहली बार सुर-जीत ने मुझे 'भाई साहब' कहा था तो मैं चौंका था और इसके पीछे मुझे तारक के दिमाग़ की लिजलिजाहट ही कुलबुलाती लगी थी···साथ ही जानता भी था कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था, आदमी अपने वर्तमान मन से ही बीते हुए की व्याख्या कर डालता है···।

"इससे ख़त क्यों लिखवाया था दिल्ली ?" अँधेरे में काफ़ी देर लेटे-लेटे भी मुझे मालूम था कि इन्दु जाग रही है ?

"वह तो यही बता रही थी कि पाँच-सात ख़त लिखवा चुका है अभी तक।" तो क्या इन्दु भी यही सब सोच रही है ?

"लेकिन क्यों ?" मैं चिन्ता से बोला, "जब इन्हें उन लोगों से कुछ लेना-देना ही नहीं है तो इन ख़तों का क्या मतलब है। पहली बात तो यह कि इन्हें पता भी नहीं लगने देना चाहिए था, ये कहाँ हैं। उलटे ये तो बाक़ायदा ख़तो-किताबत बनाये हुए हैं।"

"तारक का ख़याल है कि इन ख़तों से बाप की नाराज़ी दूर हो जायेगी। बाप अगर खुश होकर माफ कर देता है तो बाकी समस्याएँ आसानी से हल हो जायेंगी। बाप की भावुकता उभाड़ने के लिए लम्बे-लम्बे ख़त लिखवाता है कि किस तरह माँ के मरने के बाद सरदारजी ने ही सुरजीत को माँ और बाप दोनों की तरह पाला है, कैसे डैडी कन्धे पर चढ़ा कर अपनी बिटिया को घुमाया करते थे, कैसे वह खिड़की में बैठी-बैठी डैडी की राह देखा करती थी, कैसे उनके कपड़े लगाया करती थी वही।"

"साला गधा है।" मैं अधीर हो उठा, "और सुरजीत यह सब लिखती क्यों है ? इस सबसे होना क्या है ? इससे तो अच्छा यही है कि सीधे सामने जाकर माफ़ी माँग लें और नाक रगड़ें···मुहब्बत करने निकले हैं,

सालों में हौसला पाई का नहीं है···।"

"सरदार सुरजीत को भले ही माफ़ कर दे, लेकिन इसकी तो बोटियाँ काट कर रख देगा। इस बात को सुरजीत भी जानती है और यह भी समझता है।"

"क्यों, ये तो शेरमार है। बस, इतनी ही हिम्मत है ?" मैंने सोचकर कहा, "मुझे तो इन्दु, एक दूसरी ही बात लगती है इस सबके पीछे।"

"क्या ?"

"मैं यही सोचता हूँ कि इस तरह कितने दिनों चलेगा ? वहाँ जाने में भी दम निकलता है और वहाँ से एकदम तोड़ते भी नहीं बनता। मुझे तो इसके पीछे लालच की गंध आती है।"

"लड़की तो बहुत मज़बूत लगती है, उसे ये सब ढंग बिल्कुल पसंद नहीं है। लेकिन तुम्हारा तारक एकदम बे-पेंदी का है।" फिर गहरी साँस लेकर कहा, "मेरा तो दिमाग़ खराब हो गया। बाबा, जो मन में हो सो करें, लेकिन हमारी बैठक खाली हो···न किसी को बुला सकते हैं, न ठीक से रह सकते हैं। मुझे तो लगता नहीं कि एकाध महीने इनका इरादा कहीं हिलने का है।"

"आज मैंने संकेत तो दिया है। अब एकाध दिन में साफ़ ही बात कर लूँगा।" मैं चुप हो गया। खाने के बाद जब मैं वाश-बेसिन की तरफ़ गया था तो देखा कि साबुन रखने वाले पानी-भरे गड्ढे में पड़ा साबुन न जाने कब से गल रहा है। तारक ने ही मुँह-हाथ धोये थे। चुपचाप उठा-कर रख दिया, बेकार इन्दु का मूड खराब होगा।

थोड़ी देर बाद बिना किसी प्रसंग के इन्दु ने बताया, "घी और आटा खत्म हो गया है। महीने भर को मँगाया था, आज अट्ठारह को ही बादल ने नोटिस दे दिया है···।"

"करेंगे कुछ···"मेरे दिमाग़ में यों ही झुँझलाहट भरने लगी, जो किसी विशेष व्यक्ति के लिए नहीं थी। दुनिया-भर की परेशानियों में भी लोग कैसे डट कर भोजन कर लेते हैं···।

आज अकेले चाय पीते-पीते घुमड़ी बात फिर नये सिरे से सिर उठाने लगी। तारक मेरे सामने पड़ने से कतरा रहा है, पिछले तीन-चार दिनों से यह बात मैं नोट कर रहा हूँ। सिर-दर्द और बुखार तो बहाना-मात्र थे। लेकिन इससे काम कैसे चलेगा, मैं ही जाऊँगा। शायद सुरजीत ने कल वाली सारी बातें बता दी हैं।

अखबार एक तरफ रखकर मैंने पूछा, "कहो तारक, कैसी तबियत है?" मेरे आते ही सुरजीत ने पहले की तरह कपड़े इधर-उधर सरका दिये। कंधों पर ब्रैसरी की सफेद तनियाँ ब्लाउज से बाहर अलग झाँक रही थीं। उसने जल्दी-जल्दी कुछ कपड़े समेटे और साबुन लेकर शायद बाथरूम की तरफ चली गयी।

"तबियत तो ठीक है, मगर सारे शरीर और दिमाग में भारीपन लग रहा है। बदन टूटता है।" तारक छाती तक चादर ताने लेटा था, मुझे देखकर उठ बैठा। उसे एक तरफ सरका लिया। "शायद एकाध सिगरेट पीने से ठीक होगा; है आपके पास?"

मैंने जेब से डिब्बी निकालकर सामने कर दी। अब एक से दूसरी जलाकर खत्म कर देगा, सोचते हुए हिसाब लगाया, इसके साथ मैं हमेशा ज्यादा सिगरेट पी जाता हूँ। शायद अच्छा नहीं लगता कि अपनी पूरी डिबिया में से केवल दो मेरे हिस्से में आयें, बाकी दूसरा पी जाए···

"आज हम लोगों ने निर्णय ले लिया है मोहनदा," कश खींच कर खुशी और सन्तोष से उसने बताया। "कल गोयल वगैरा के साथ यह तय किया कि हम चुपचाप दिल्ली चले जायें, पहले इस शादी के सारे कागज-पत्तर निकलवाकर इसे अनहुआ करें फिर बनारस वालों पर एडल्टरी का मुकदमा किया जाये···उस शादी के खत्म होते ही रोब के साथ सुरजीत के साथ शादी करके दिल्ली ही रहा जाये। तब कोई क्या बिगाड़ सकता है?"

"लेकिन क्या इस शादी को अनहुआ करना बहुत जरूरी है? किसी को क्या पता कि तुमने आर्य-समाज में जाकर सुरजीत के साथ शादी की

है ?" मैंने मुस्कराकर पूछा।

"यह बात तो अब सभी को मालूम हो गयी है न, इनके डैडी जानते ही हैं, बनारस वालों से भी छिपी नहीं होगी। अब तो वे उलटे हमें ही फँसा सकते हैं कि एक के रहते दूसरी शादी कैसे कर ली ? इसलिए यह ज़रूरी है कि पहले दिल्ली आर्य-समाज के कागज़ों का कुछ हिसाब बैठाया जाये। उसमें हमने यह बयान भी तो दे दिया है कि पहले हमारी कोई शादी नहीं हुई और हम अविवाहित हैं। बनारस वाले ज्यादा-से-ज्यादा यही तो करेंगे कि बीबी-बच्चों की परवरिश के नाम पर प्रॉपर्टी में हमें हिस्सा नहीं देंगे···हम समझेंगे, चलो जान छूटी। हमें कौन अब बनारस जाकर फिर से रहना है ? रहना तो दिल्ली ही होगा। तब इनके डैडी की नाराज़ी भी दूर हो जायेगी।

तो डैडी की प्रॉपर्टी चाहिये ! बात को आगे न बढ़ाने के लिए मैंने सवाल किया, "अच्छा, यही ठीक है। अब इसमें क्या दिक्कत है ?"

"इसके लिए सुरजीत नहीं मानती। हमने रात बहुत देर तक समझाया, लेकिन ये तैयार ही नहीं होतीं। कहती हैं कि मान लीजिए, हमने इस शादी को भी ख़त्म कर दिया और उधर से छुटकारा नहीं मिला तो मैं कहाँ की रह जाऊँगी ? मान लो, दस साल बीवी से सम्बन्ध न रखने से शादी अपने आप ही ख़त्म हो जाती हो तो पहले वाली शादी की समस्या ही नहीं है। उस हालत में यह शादी जायज़ है···।"

मैं झल्ला उठा, "लेकिन दस साल तुम्हारे उस बीवी से कोई सम्बन्ध नहीं रहे, यह तो तुम कहते हो न, वहाँ जो बच्चे रखे हुए हैं, उनका क्या करोगे ? पहले तो यही साबित करना मुश्किल हो जायेगा कि वो बच्चे तुम्हारे नहीं हैं···।"

"इन्हीं सारे झंझटों से ऊब कर तो हमने दूसरा निर्णय ले लिया है और अब उसी पर चलना है। हमें लगता है कि इस तरह यहाँ रहने से कोई फ़ायदा नहीं है। दूसरी बात···" उसने कुछ सोचते-सोचते बताया, "कल हमें लगा, जैसे दो आदमी लगातार हमारा पीछा कर रहे हों। एक सरदार लड़का-सा है और दूसरा मोटा-तगड़ा बिहारी है···हमें तीन-चार बार मिले कल। जब यहाँ आये तो बड़ी मुश्किल से उन्हें चरका देकर आये

थे कि कहीं देख न लें। सुरजीत को भी दिखाया था। लग तो दो-तीन दिनों से रहा था जैसे हमारा पीछा किया जा रहा हो, लेकिन कल तो पक्का हो गया। अकेले-दुकेले में हमें मारकर फेंक दें तो बेचारी लड़की का क्या होगा।" उसके चेहरे पर खौफ उतर आया।

मैं खुद उसे ग़ौर से देख रहा था, क्या आँखों में कोई अस्वाभाविक चमक दीखती है? बार-बार नथुनों में उँगली घुसाकर उन्हें और आँखों को साफ करते देखकर झल्लाकर कह देने को मन करता था—जाओ, पहले आँखें और नाक साफ़ कर आओ। लेकिन उस तरफ़ से ध्यान हटाकर पूछा, "ख़ैर तुमने निर्णय क्या लिया है?"

"हमने यही तय किया है कि हम लोग यहाँ बिल्कुल भी नहीं रहेंगे। न दिल्ली जायेंगे न बनारस। दोनों जगह कोई न कोई झमेला लगा ही है। किसी छोटी-सी पहाड़ी जगह जाकर साल-दो-साल काट देंगे। वहाँ खर्चा भी कम होगा। तब तक लोग सब भूल-भाल जायेंगे।" वह सहमता-सा बोला।

"अच्छा चलो, यह भी ठीक है।" मैं जिरह पर उतर आया, "लेकिन खर्चा चाहे जितना कम हो, कुछ तो होगा ही। उसका क्या इन्तज़ाम सोचा है? डेढ़-दो सौ से कम में तो कहीं कुछ नहीं होता। फिर आना है, जाना है, डेढ़ेक हज़ार तुम दिल्ली पहले ही खर्च कर आये हो।" अचानक मन में आया कि उनके खर्चे को लेकर मैं इतना परेशान क्यों हूँ?

"देखिए, दो हज़ार के करीब हमें कॉलेज से मिल जायेगा फण्ड का।"

उसकी बात पूरी होने से पहले ही मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा, "तारक, यू आर ए लिमिट! वह आज या महीने-भर में मिलेगा? उसे दो महीने लगें, चार लगें, कौन जाने साल-भर में भी मिल पाये या नहीं? फिर यह सब यहाँ बैठे-बैठे होगा? हो सकता है उसके लिए तुम्हें वहाँ जाना पड़े···तुमने तो शायद वहाँ बाक़ायदा इस्तीफा भी नहीं दिया न?"

"नहीं···" वह हिचकिचाया।

"तो फिर?" मैंने सख्त निगाहों से उसकी कीचड़-भरी आँखों, चश्मे के छल्लों और तार छोड़ते मुँह की तरफ़ घूरा। कैसे सुरजीत इस गंदे

आदमी से प्यार करती होगी ? कड़े स्वर में कहता रहा, "मुझे नहीं पता तारक, तुम्हारे उस गोयल या और दोस्तों की आर्थिक हालत क्या है और वो मौके पर हज़ार पाँच-सौ दे भी देंगे या नहीं, लेकिन सुरजीत ज़रूर परेशान थी कि पैसे ख़त्म हो गए हैं···"

लगा, उसका चेहरा तमतमा आया है, यानी उसे सुरजीत को कही गयी कल वाली बातें मालूम हैं। तैश में बोला, "मोहनदा, हमें किसी का अहसान नहीं लेना। जिसका जो होगा रत्ती-रत्ती चुका देंगे। दान तो किसी से नहीं माँगते, कर्ज़ की तरह लेते हैं और जो सूद दूसरे देते हैं वही हमसे ले लें···आज हालत चाहे जैसी हो, लेकिन जिसके यहाँ एक बार खाया है उसे हफ्ते-भर का दाम चुका देंगे, इतना विश्वास रखिए। पाई-पाई का हिसाब रखा हुआ है···"

"तारक, कोई किसी के खाने का भूखा नहीं होता।" मुझे भी गुस्सा आ गया, "और किसी के किये हुए को अगर तुम पैसों में चुकाने की बात करते हो तो यह भी समझ लो कि किसी को बैठे-बैठाये मुसीबतें मोल लेने का शौक नहीं है। दूसरा जो भी करता है वह कोई अहसान नहीं करता, ऐसा समझने वाले आदमी को किसी से कोई उम्मीद भी क्यों करनी चाहिए ? गोयल जो तुम्हारे लिए परेशान है, यहाँ-वहाँ मिलने जाता है, उसे तुम पैसों में चुकाओगे ? और सिर्फ़ यह कहने पर कि तुम सूद दे दोगे, कौन तुम्हें कर्ज़ा देगा ? दोस्त लोग खुद किस तरह कर्ज़ों में रहते हैं, इस बात का तुम्हें कोई अन्दाज़ा है ?" मुझे लगा कि सारी बात निहायत व्यक्तिगत हुई जा रही है और अगर मैंने अपने पर नियन्त्रण नहीं किया तो कोई ग़लत काम कर बैठूँगा, तेरे बाप का देना है जो···पता नहीं कैसे, मैंने आवाज़ नीची करके समझाया, "भाई मेरे, हवा में मत उड़ो और थोड़ी व्यावहारिक बात करो। जो लोग कर्ज़ा दे भी सकते होंगे वो तुम्हारी हालत देखकर नहीं देंगे। सारी ज़िन्दगी तुम इसी तरह पड़े रहोगे और तुमसे कोई निर्णय नहीं लिया जायेगा। लोगे भी, तो वो सब ऐसे ही शेख़-चिल्लीपने के होंगे जिनका न सिर होगा न पैर···वरना पहाड़ी जगह तो मैं भी बता सकता हूँ, जहाँ साल-छः महीने आराम से रह सको···।"

फिर मुझसे बैठे नहीं रहा जा सका। भीतर तक जैसे कुछ तिलमिलाया

जा रहा था। अहसान-फ़रामोश! दूसरों की चिंता-परेशानी, भाग-दौड़, लोगों से नौकरियों के लिए कहना, तुम्हारे नखरे बर्दाश्त करना तो तुम्हारा हक है न! आते हुए मैंने नफ़रत से एक सिगरेट उसके सामने फेंकी थी। वह निर्णय ले या न ले, मुझे सिर दर्द करने की जरूरत क्या है? मैं क्यों जबर्दस्ती उसका अभिभावक बन बैठा हूँ? उसकी क्या समस्यायें हैं, वह कैसे सँभालेगा; उन सबको लेकर मुझे परेशानी क्यों है? मैं यह उम्मीद भी क्यों करता हूँ कि उसे मेरा अहसान मानना ही चाहिए? मेरे लिए अब सोचने की बात सिर्फ़ यही रह गयी है कि दोस्त न सही, आदमी की तरह कितने दिनों इन लोगों को अपने यहाँ रख सकता हूँ? जो मन हो, सो करें। दो दिनों बाद साफ कह दूँगा—भाई तारक, मुझे बैठक चाहिए, आखिर कब तक हम अपने सारे प्रोग्राम स्थगित किये चले जायें? न उठने की जगह, न बैठने का ठौर···कल को मकान-मालिक ही कह सकता है कि आपने अपने मकान में किरायेदार रख लिये हैं। उससे सफेदी-पुताई को लेकर अलग झगड़ा चल रहा है। परेशान ही करना चाहे तो कल ही नोटिस भेज दे···दो दोस्तों को भी बुलाओ तो चार पहले ही घर में माजूद हैं, छः आदमियों का खाना-चाय अकेले बादल से सँभलता नहीं है, बीस चक्कर तो बाजार के करने पड़ते हैं, अबके सिगरेट ले आओ, अबके पान चाहिए, पानी को बर्फ़, कोकाकोला। ये लोग बाजार से आते हैं तो यह भी नहीं कि लिफाफे-पोस्टकार्ड तक लेते आयें, उसके लिए भी बादल दौड़ाया जाता है। तीन बार उसे ब्लेड लेने मार्च करनी पड़ती है, ऐसा नहीं, ऐसा लाओ। जाते समय नहीं बताया जायेगा। तम्बाकू लेने के लिए उसे हमेशा पान लाने के बाद दुबारा जाना पड़ता है···अपने से अधिक इन्दु की झल्लाहट का बोझ मेरी आत्मा पर था।

जो इच्छा हो सो करने दो, सोचकर मैंने आज इन्दु को चौरंगी पर ही बुला लिया था। सिनेमा के टिकट ले आया था। इन सारे दिनों के मानसिक तनाव और हवाई समस्याओं पर सोच-सोचकर हम लोग इतने ऊब चुके थे कि मनोरंजन आवश्यक हो गया था। शाम को इन्दु लाइट-हाउस पर आ गयी थी और हम लोग जान-बूझकर तारक-सुरजीत के प्रसंग को टालते रहे थे, एक शब्द भी नहीं बोले थे, हालाँकि टाली जाती

बात ही अक्सर दो आदमियों के बीच मँडराया करती है। हर क्षण एक बेचैनी थी कि सारे दिन पंखे चलते रहे होंगे, बत्तियाँ जलती रही होंगी, कपड़े बिना धुले कोनों में जमा हो रहे होंगे, साबुन गल रहा होगा और ढक्कन खुले पेस्ट से लगातार सफेद साँप कुण्डलियाँ मारता बैठा होगा··· रह-रहकर बादल से लगातार कभी पानी, पान, चाय की माँग हो रही होगी। लाख मन को समझाने की कोशिश करता कि जहाँ दस का नुक-सान, वहाँ पन्द्रह का सही; मगर चीज़ों का उपयोग मुझे इतना कष्ट नहीं देता जितना उनका बरबाद होना···इधर तो मैंने नियम ही बना लिया था कि जहाँ से तारक निकलेगा, उस जगह पंखे-बत्ती मुझे ही बन्द करने हैं, पानी-भरी साबुनदानियों का पानी झाड़कर उन्हें ऊपर रख देना है, बहते हुए खुले नल की टोंटी कसनी है, सारे दिन मक्खियाँ भिनभिनाते शेव के पानी को फेंक कर ब्रश और मग साफ करने हैं, बैठक से बाहर, खाने की मेज़ के पास फेंके गये सिगरेट के डिब्बों, पान लपेटने वाले पत्तों और बस-ट्राम के टहलते टिकटों को समेट कर कचरे की टोकरी में डालना है। आश्चर्य होता था कि कैसे इस आदमी को दूसरों की असुविधाओं का इतना भी ख्याल नहीं रहता।

सिनेमा के बाद हम लोग यों ही टहलते रहे। समझ रहे थे कि घर जाना टाल रहे हैं। टैक्सी में बैठे हुए भी लगा, जैसे हम लोग ही मेहमान हैं और दूसरे के यहाँ अवांछनीय रूप से रुके हैं और हमारे होने से उन्हें बहुत असुविधाएँ हैं। आते ही इन्दु ने केवल लापरवाही से बताया था, "आज तो दोनों घर ही रहे, कहीं गये नहीं···।" यानी बादल की डटकर परेड हुई होगी।

"मुझे लगता है, यह इस लड़की की जान लेकर रहेगा। इसे आखिर समझाएँ भी क्या? अब तो यही लगने लगा है कि इन्हें समझाना भी बेकार है···अन्धे के आगे रोवै, अपने दीदे खोवै···मसल है, गवाह चुस्त, मुद्दई सुस्त, हम चिंता के मारे रात-भर न सोयें कि हाय, बेचारों का क्या होगा और इन सालों को···" सुरजीत को भी इसमें शामिल कर लेने में मन में कहीं संकोच था। मैंने मन में तय कर लिया था कि तारक की अक्ल मारी गयी है और सुरजीत में सिर्फ गोरा रंग और खूबसूरत नाक-

नक्श ही हैं, दिमाग़ खाली है और वह भी मूलतः पिंडलियों तक सलवार में पाँयचे चढ़ाये मोगरी लेकर कपड़ों का गट्ठर कूटने वाली लड़की के अलावा कुछ नहीं है।

"तुम देख लेना, इनका ये सारा मामला चलेगा नहीं···बहुत जल्दी ही नशा उतर जायेगा। किस तरह दोनों आपस में लड़ते हैं। बादल बता रहा था कि आज तो शायद तारक ने एकाध तमाचा भी रसीद कर दिया···" इन्दु अफ़सोस से बोली, "इतने अच्छे घर की लड़की है, सुशील और समझदार है, जूतों पर पालिश करने से लेकर कमीज़-मोजों पर प्रैस करने तक सारा काम करती है, कौन करेगा इस बैल की इतनी सेवा? फिर जिस तरह का अपने को बताती है, उसमें इसने कब-कब यह सब किया होगा? मुझे तो इस आदमी के चेहरे से नफ़रत हो गयी है···जब देखो आँखों से कीचड़ निकलता रहेगा, दाँत साफ करेगा नहीं, बात करेगा तो तार छूटेंगे···।" अपनी ही कल्पना से उसने फुरहुरी ली—"बादल बता रहा था कि खूब लड़ाई हुई। सुरजीत मेरे कमरे में जाकर रोती रही···"

"ऐसे ही लोग होते हैं शायद जो लड़कियों को बम्बई-कलकत्ता ले जाते हैं, उनके गहने-कपड़े बेचकर मौज उड़ाते हैं, फिर अकेले होटल के कमरे या स्टेशन पर छोड़कर ग़ायब हो जाते हैं।" जाने कितनी फिल्मों, उपन्यासों और अखबारों की कतरनें मेरे मन में फड़फड़ाते हुए निकल गयीं, "लेकिन इन शेरमार साहब में तो वह केलकुलेशन भी नहीं लगता··· सरदार छुरा लेकर पीछे-पीछे भागा आ रहा है, इनको तो इस कल्पना के सिवा और कोई बात सोचने में मज़ा ही नहीं आता···।"

"लड़की समझदार है और कहाँ, कैसे रहना चाहिए, इस बात को जानती है। जहाँ रहो, वहाँ बोझ न बनो। हमें अपना कुछ भी नहीं कराना लेकिन अपना काम तो खुद कर लो। वह काम में हिस्सा बँटाने की कोशिश करती है, जहाँ तक होता है बादल पर बिल्कुल भी ऐक्स्ट्रा काम नहीं डालती, लेकिन दो-दिनों से देख रही हूँ, सुरजीत कुछ भी करे, यह साहब-बहादुर को अच्छा नहीं लगता। ज़रा-ज़रा-सी देर बाद बुलवा लेता है, डाँटता है, क्या कर रही हो वहाँ, यहाँ क्यों नहीं बैठतीं? मेरा सिर दबा दो, मेरे हाथ मल दो। भीतर से नारे लगाता रहता है, बादल ये दे

जाना, वो दे जाना। बादल ने बुरा-सा मुँह बनाकर बताया था कि आज तो खाना भी भीतर ही मँगा लिया था। पता नहीं, होटल समझकर रह रहे हैं या···" इन्दु की इतनी देर की चुप्पी अब धारा-प्रवाह में फूट पड़ी थी। "इन लोगों की नवाबी में किसी दिन मेरा तो नौकर ही हाथ से चला जायेगा। उसके ऊपर तो सच, बहुत बोझ आ गया है। किसी तरह सारा काम सिखाया है, चला गया तो पता नहीं अगला आदमी कैसा मिले, कब मिले और उसे फिर काम सिखाने में कितना वक़्त लगे···मुझसे तो अब उनकी सेवा-टहल होती नहीं। सारे दिन कॉलिज में सिर खपा कर आओ, फिर घर में झुको। सुबह के खाने का झमेला समेटते-समेटते तीन-साढ़े तीन बज जाते हैं, फिर रात को ग्यारह-साढ़े ग्यारह से पहले खाली नहीं होता। मेज़ पर अखबार रखा रहेगा, वह तक तो लाट-साहब से लिया नहीं जाता, वह भी बादल ही उठाकर दे···मैंने तो आज मना कर दिया। पता नहीं मेरे-तुम्हारे सामने पड़ने में इतना क्यों कतराता है···? इन लोगों की वजह से आजकल सच, मन में खाने-पीने को लेकर भी बड़ी कमीनी बातें आने लगी हैं···।"

इन्दु शायद रास्ते-भर बोलती आयी। घर लौटते हुए एक अजीब-सी अनिच्छा हो रही थी, वहाँ कहाँ घुटन और झंझट में जायें, कुछ देर और यहीं-कहीं बाहर बैठते···

दरवाज़ा सुरजीत ने ही खोला। देखकर स्वागत में मुस्करायी। अपने आप मन की सारी घुटन छँट गयी। हँसकर कहा, "मुझे तो तुम्हारा दर-वाज़ा खोलकर हमें लेना ऐसा लगा जैसे हम तुम्हारे यहाँ आए हैं···" पल भर कोई अस्पष्ट-सी बात समझने से पहले ही कहीं खो गयी।

उमड़ती उदासी को रोककर उसने कहा, "देखती हूँ भाई साहब, उस समय आप कितनी बार आया करेंगे···?"

"धमकाती किसे हो सुरजीत, देख लेना।" मैं परिहास से बोला। खाने की मेज़ पर सिलाई-मशीन खुली रखी थी। शायद सुरजीत बैठी कुछ सी रही थी। "शेरमार साहब कहाँ हैं ?"

"अभी कहीं चले गये हैं। शायद किसी रिश्तेदार से मिलने गये हैं··· कोई बंगाली ही है। बेहाल या कहाँ हैं···" मुझे लगा, मेरा 'शेरमार'

कहना उसे पसंद नहीं आया।

"अकेले चले गये ? तुम्हारे डैडी के किसी आदमी ने गोली-वोली मार दी तो ?" मैंने हँसकर कहा। अनचाहे बातों में न जाने कहाँ का डंक उभरता चला आ रहा था। उसे ही दबाने को मैंने सहानुभूति से पूछा, "तुम नहीं गयीं ?"

"ओ बाब्बा, मैंने कान पकड़ लिये", उसने दोनों कान छूकर कहा, "बनारस जाने के बाद ही मैंने कसम खा ली कि अब किसी रिश्तेदार के यहाँ नहीं जाना, मेरा हो या इनका। एक वो अपने गोयल के यहाँ ले गये थे···।"

"तुम बनारस गयी थीं ?" मुझे धक्का लगा, जाने कितनी बातें हैं जो इन लोगों ने हमें नहीं बतायी हैं। और जितनी बतायी गयी हैं, पता नहीं, उनमें कितनी सच हैं। मेरा मन फिर बुझने लगा।

"हाँ, दिल्ली से हम लोग बनारस गये थे सीधे। डेढ़ दिन में ही इनके घर वालों और पहली बीवी का जो रुख देखा तो मैंने तय कर लिया कि अगर यहाँ से एकदम नहीं चल दिये तो खैर नहीं है। वहाँ तो यह हालत कि या तो खाने में कुछ दे दें या रात-बिरात काट-कूट कर ठिकाने लगा दें। मैंने तो कह दिया, चलते हो तो चलो, वरना मैं अकेली ही जाती हूँ।" फिर याद करती-सी बोली, "एकदम चण्डी हैं इनकी माँ और बीवी सबके सब। जिन्दगी में शायद इतना बुरा व्यवहार मैंने कभी नहीं सहा। मैंने भी तय कर लिया कि ज्यादा कुछ किया तो मैं भी एकाध का सफाया कर दूँगी। मैं भी सरदारनी हूँ। इतनी आसानी से कुछ नहीं करने दूँगी। अरे हाँ, गलती जो हो गयी, उसके लिए फाँसी ही चढ़ना हुआ तो अपने बाप से नहीं चढ़ूँगी ? उन चाण्डालिनियों को तो ये हक कभी न दूँ।" वह गर्व से बोली माथे की एक-एक नस को फड़काती हुई।

"वहाँ ले ही क्यों गये थे तुम्हें ये हज़रत···?" सब कुछ के बावजूद सुरजीत इतना कुछ अपने-आप में थी कि पुराने अपमान का अहसास अपने आप घुल गया, "शायद अपने घरवालों को यह दिखाने ले गया होगा कि देखो, मैंने कैसी शाबासी का काम किया है। सोचा होगा, शायद तुम्हारी

खूबसूरती देखकर ही घर वाले खुश हो जायें और शहनाइयाँ बजवाने लगें···।"

वह बिना झेंपे खिलखिलाकर हँसी, "एकदम सच बात है भाई साहब, थोड़ा-सा तो मैं भी इन्हें अब जान ही गयी हूँ। हालाँकि मैं किस बात की खूबसूरत हूँ, मेरी समझ में तो आता नहीं। इस कलकत्ते में गली-गली में मुझसे खूबसूरत पड़ी हैं।"

"वो तो निगाहों की बात है।" मैंने मन में जोड़ा, माइनस नम्बर की छल्लेदार काँचों के पीछे से झाँकती, कीचड़-भरी निगाहों की? उन निगाहों की जो अकारण ऐसी पथरा-सी जाती हैं, जैसे बाघ के सामने पथरा गयी होंगी?

"आप तो छेड़ने लगे।" वह अतिरिक्त रूप से भौंहें नचाकर बोली। फिर बात बदल दी, "अभी भी दिन छिपे के बाद गये हैं, बड़ी टाई-वाई चढ़ाकर। मैंने कहा कि मैं भी चलूँगी, तो बोले कि तुम्हें देखकर डैडी के आदमी जरूर ही पहचान लेंगे···।"

"अरे सुरजीत, तुम भी उसके साथ बेवकूफी की बातें करने लगीं? कहाँ डैडी और कहाँ डैडी के आदमी? किन बातों में आयी हो? उनके पास और कोई काम नहीं रह गया क्या? इसे तो इस तरह की कल्पनाओं में मजा आने लगा है और सोचते अच्छा लगता है कि कोई बन्दूक लिये इसके पीछे लगा है। इसमें जरा हीरो बने रहने का आनन्द है न···। हमेशा एक सनसनीदार वातावरण बना रहता है।"

"नहीं भाई साहब, इनकी बात में तो झूठ नहीं है। एक आदमी मैंने देखा था, मुझे भी लगा शायद वह डैडी के ऑफिस में काम करता था। मैंने उसे उनके यहाँ देखा जरूर था।" उसने मशीन का ढक्कन बंद कर दिया, दोनों ओर से उठाते हुए कहा, "वो मेरे डैडी हैं, इसलिए नहीं कह रही, लेकिन इतना मैं भी जानती हूँ कि जिसके दुश्मन हो जायें उसके लिए वे सब कुछ कर सकते हैं···।"

इन्दु कपड़े बदलकर निकल आयी थी, चेहरा सख्त और नाराज। उसे इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। आते ही मुझसे जोर से बोली, "खाना-वाना खा लो, साढ़े नौ बज रहे हैं। फिर बादल को भी छुट्टी मिले

…वो लोग भी आदमी हैं।"

"वो खाने को मना कर गये हैं…" मशीन लेकर सुरजीत भीतर चली गयी थी, वहीं से बोली। लगा, इन्दु इसलिए नाराज़ है कि टैक्सी में तो मैं ऐसी-ऐसी बातें कर रहा था और यहाँ आते ही रुख़ बदल गया, शायद सुरजीत को देखकर। मशीन उठाने के कारण, जब एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई को मसलती हुई सुरजीत कमरे से बाहर निकली तो मुझे लगा, जैसे हाथ की चूड़ियाँ कुछ कम हैं। एक हाथ में तो सिर्फ़ स्टेनलैस स्टील का कड़ा ही है। (यह बंगाली सुहाग-चिह्न सुआ है या सिक्खों वाला कड़ा) बात ज़बान पर आकर रह गयी, कुछ नहीं पूछा। कपड़े बदलते हुए सोचा, साला अविश्वासी, घुन्ना और शक्की है, इतनी बड़ी बात आज तक मुझे नहीं बतायी कि बनारस ले गया था। कहीं ऐसा तो नहीं कि सचमुच ही भाग-भूग गया हो, लौटकर ही न आये…जब वह नहीं होता है तो घर का वातावरण कैसा सहज होता है…मुझे लगा उसके चम्मच पकड़ने, रोटी चबाने, चाय सुड़कने, होंठ निकालकर सिगरेट पीने, बाल काटने सभी से मुझे असह्य चोट हो गयी है, अकारण ही कहीं मुक्का मारने, ठोकर मारकर बरतन बिखरा देने की इच्छा मुझे उकसाती रहती है।

जब रात के ग्यारह बजे तक भी आने के कोई लक्षण नज़र नहीं आये तो मुझे चिन्ता हुई। कहीं भाग गया हो या उसके साथ कुछ हो गया हो तो क्या होगा ? मुझे तो यह भी नहीं पता कि थाना कहाँ है और इस तरह खोये आदमी को तलाश करने के लिए कहाँ-कहाँ जाना होता है ? जाने क्यों ऐसा लगने लगा कि तारक अब शायद सुरजीत से भी भागता है। खाते समय सुरजीत ने हँसते हुए एक बात बतायी थी, "हो सकता है वो आज भी कालीघाट ही चले गये हों…"

"कालीघाट क्यों ?" हम दोनों ने आश्चर्य से पूछा था।

"हँसिए नहीं, कल हम लोग एक बड़ी दिलचस्प जगह गये थे कालीघाट में। ये ही न मालूम कहाँ से पता लाये थे। कालीघाट ट्राम-रास्ते के एक तरफ से तो काली मन्दिर जाते हैं, दूसरी तरफ नाले के सहारे-सहारे मकानों की कतारें हैं। पानी बरस रहा था, इसलिए रास्ता बड़ा कीचड़-

पानी भरा था। हम लोग रिक्शे में बैठे थे इसलिए आस-पास का ज्यादा नहीं दीखता था। बस, सड़क की कीचड़ और गड्ढ़ों से होकर जा रहे थे, लोगों के थप्थप् करते पाँव और जूते या छातों के सिरे ही दीखते थे। रात में वैसे ही पता नहीं चलता कि किधर और कहाँ जा रहे हैं। पहले तो मुझे भी लगा, जाने कहाँ लिए जा रहे हैं। ख़ैर एक जगह उतरे, लाल-सा बरामदा था, भीतर शायद छोटा-सा मन्दिर था। वहीं काला-काला मोटा-सा पुजारीनुमा कोई आदमी राह देख रहा था। उससे इनकी पता नहीं कैसी बँगला में कुछ बातें हुईं। उसने हम दोनों को एक मूर्ति के पास हरे-सफ़ेद फूलों वाले फ़र्श पर बैठा दिया, धरती पर ही खड़िया से कुछ जन्तर-मन्तर से बनाये, धूप-लोबान जलाया, हाथ-माथा देखे और पता नहीं पत्रे और किताबों में क्या-क्या देखकर बड़बड़ाता रहा, बताया कि तुम्हारे सारे ग्रह टल गये हैं और एक सौ चालीस घड़ी में मेरे डैडी मुझसे खुश हो जायेंगे, उनके मन का सारा मैल धुल जायेगा। सवा रुपया या सवा पाँच रुपये लेकर उसने कुछ प्रसाद जैसा खाने को दिया, एक फूल और सुपारी बाँह में बाँधने को दी, अगर दस दिनों में दिल्ली से बुलावे का कोई पत्र न आये तो फिर आने को कहा। मुझे तो तब भी बड़ी हँसी ही आती रही। आते वक्त तो मैं रिक्शे में खिलखिला कर हँस पड़ी, यह क्या तमाशा है? मुझे पहले तो बताया होता। इस पर ये रास्ते भर मुझे डाँटते आये कि बहुत लोगों ने इस आदमी की तारीफ़ की है और बहुत गुणी आदमी है। खोयी हुई चीज़ का नाम मुँह से न लीजिए, चेहरा देखते ही बता देता है कि आपकी फलानी चीज़ गुम हुई है और मिलेगी या नहीं। मिलेगी तो कितने दिनों में और कहाँ मिल जायेगी। मुझसे तो वो सुपारी-वुपारी बाँधी नहीं गयी, मैंने तो लाकर अटैची में डाल दी, बस आज इसी बात पर डाँटते रहे कि मैं चाहती नहीं हूँ कि इस मुसीबत का कोई रास्ता मिले···।"

किस्सा सुनाते हुए वह खुद हँस रही थी और मुझसे भी अपने को रोके रखना मुश्किल हो गया, "कमाल है यार, मैं नहीं समझता था कि यह आदमी इतना पहुँचा हुआ है···।" अब गुनी और ओझा लोगों के चक्कर शुरू हो गये। सारे दिन जो कमरे में बन्द रहता है सो साला कहीं किसी

मंत्र-यंत्र का जाप न करता हो, बीमारी का बहाना करके···नौकरी मकान तो गया भाड़ में और अब उच्चाटन-वशीकरण हो रहा है···मुझे हलका-सा ख़याल आया, या याद रहने का भ्रम हुआ कि मैंने हाथ में जन्म-पत्री जैसी चीज़ को ले जाते भी देखा था तारक को···सुरजीत ने जिस हाव-भाव से सारी बात सुनायी थी उससे तो हँसी ही आती रही थी, मगर अब लेटे-लेटे अफ़सोस हो रहा था लड़की के लिए। सुरजीत ने ही बताया था, "अगर इनके साथ ऐसी बातों में दिलचस्पी न दिखाओ तो बच्चों की तरह रोते हैं कि तुम मुझे प्यार नहीं करतीं, तुम चाहती हो कि मेरे ऊपर मुसीबतें आती रहें और मैं यों ही दर-दर मारा फिरता रहूँ। कभी कहते हैं कि ज़रूर बनारस वालों ने कोई मंत्र हम लोगों पर चलवाया है, वहाँ एक से एक सिद्ध पड़े हैं। उनका काट करना ज़रूरी है। कुछ कहो तो कहते हैं कि तुम चाहती हो कि एक दिन मैं जागूँ तो देखूँ कि एक हाथ ही ग़ायब है, या दिखायी नहीं देता। अब क्या समझाऊँ इन्हें। हर समय यही कहते हैं कि मुझे हमेशा डर लगा रहता है, मेरी सुरजीत को मुझसे कोई छीन लेगा, दुनिया मुझे छोड़ दे, लेकिन जिस दिन तुम मुझे छोड़ दोगी उसी दिन मैं आत्महत्या कर लूँगा···।" सुरजीत की बात से मुझे लगा था कि शायद अब तारक चाहता है कि किसी तरह सुरजीत ही उसे छोड़ दे, अकेली अपने डैडी के पास चली जाये। अब उसकी बात सोचो तो चिड़चिड़ाहट होती थी···लड़की बहुत हिम्मत वाली है, बिना डरे ऐसी जगह चली गयी।

साढ़े ग्यारह बजे के करीब टैक्सी का मीटर अप किये जाने की आवाज़ आयी तो मैंने चुपके से वॉश-बेसिन के पासवाली जाली से झाँक कर देखा। झूमता हुआ तारक मीटर के पास खड़ा उसे पढ़ने की कोशिश कर रहा था, पर्स पिछली जेब से निकालता हुआ। कभी एक तरफ़ झुक कर गिरने लगता, कभी दूसरी तरफ़···ग़ौर से देखा, तारक ही था···यह क्या कर आया है? पैसे लेकर जब टैक्सी गयी तो पहले तो मुड़ती हुई जुड़वाँ लाल बत्तियों को देखता रहा, फिर भालू की तरह लड़खड़ाता हुआ ऊपर मकानों की तरफ़ देखता कुछ पहचानने की कोशिश करता खड़ा रहा। तभी पता नहीं किधर से आकर सुरजीत ने उसे सँभाल

लिया। लैम्प-पोस्ट के नीचे पहचानने में दिक्कत नहीं हुई। वह कन्धे पर उसका हाथ लेकर सहारा देती उसे ला रही थी। पता नहीं, चुपचाप कब उतर गयी, मुझे खटका भी सुनायी नहीं दिया। या तो उसने दरवाजा पहले ही खोल रखा था या बहुत बेमालूम ढंग से चटखनी उतारी थी। उस क्षण मुझे लगा, जैसे वह समुद्र की लहरों को काटती ऐसे थके-हारे आदमी को निकाल कर सहारा देती ला रही है जिसका बजरा कहीं सागर में ही डूब गया हो···और जो लहरों से लड़ते-लड़ते बेदम-पस्त हो चुका हो···एक बड़ी क्लासिकल अनुभूति थी वह···मैं चुपचाप वापस आकर लेट गया। प्यार···क्या सचमुच इसे ही प्यार कहते हैं जिसके बारे में अब तक हम पढ़ते आये हैं, सुनते आये हैं और जो मंत्र के प्रभाव की तरह आदमी की आत्मा को छाये रहता है···? आधी रात के उस एकान्त में मुझे रह-रह कर निश्शब्द लगता रहा, जैसे मैंने किसी बहुत ही महान् और दिव्य के दर्शन किये हैं और न जाने कब तक वह अनुभूति मुझे विभोर किये रही···इन्दु होंठ कसे वैसे ही सो रही थी···या शायद सोने का बहाना किये थी···इन्दु, तुम नहीं जानतीं किस महान् और पवित्र के दर्शन से तुम वंचित रह गयी हो···क्या पूर्णिमा ने कभी इस अनुभूति को जाना है ? मुझे लगा, मेरी आँखों में आँसू आ गये और एक अजीब असहायता, अनाथ होने का भाव उभर-उभर कर धुएँ की तरह घुमड़ने लगा···

आज शायद इन लोगों के कुछ ख़त आये थे। तारक आज भी सारे दिन लेटा रहा और मेरे आने से कुछ देर पहले ही कहीं चला गया। मैं पिछले चार-पाँच दिनों से रोज़ तय करता था कि आज तारक से बहुत साफ बातें कर लूँगा, लेकिन जब वह न मिलता तो कहीं मन में संतोष भी करता कि एक अशोभन स्थिति बच गयी। अपने को समझाता कि जब वह मुझे मिलता ही नहीं है तो कब बातें करूँ ? कल जरूर कर लूँगा। सुरजीत भी बीच में कहीं गयी थी दोपहर बाद, फिर तीन-चार घण्टों में

लौट आयी। जाने ये लोग क्या करते रहते हैं, कहाँ-कहाँ जाते रहते हैं, मुझे कुछ भी क्यों नहीं बताते ? जब दोनों में से कोई भी नहीं था तो चुपके से मैंने एक बार बैठक में जाकर इनके कागज़ों-कपड़ों की तलाशी ली थी, जेबें टटोली थीं। अटैचियों के ताले बन्द थे और मौक़ा नहीं था कि अपनी चाबियाँ लगाकर देख सकूँ। आखिर कुछ तो पता चले कि स्थिति क्या है ? मैं अपनी बेचैनी इन्दु से भी छिपाना चाहता था और इसलिए निहायत उदासीन बने रहने का नाटक करता था। जेबों में सिनेमा और बसों के टिकट, एक कागज़ पर कुछ हिसाब-किताब ही मिले, हाँ, जन्म-पत्रियाँ और दुनिया-भर के मंत्र लिखा पुलन्दा ज़रूर अटैची के ऊपर कपड़ों से ढँका रक्खा था। पत्रों से ही असली बात पता चल सकती थी, लेकिन पत्र कोई बाहर नहीं था। अपने ही कमरे में चोरों की तरह घुसना निहायत ओछा और अनधिकार चेष्टा लग रही थी। जब इन्दु ने बताया कि दोनों बाहर हैं और इनके दो पत्र आये हैं तो मन हुआ कि किसी तरह इंदु की निगाह बचाकर बैठक में चला जाऊँ और उन्हें खोलकर देखूँ। लेकिन इंदु से यह कहते भी डर लगता था, शायद अपने को उसकी निगाहों में गिराना नहीं चाहता था। पहली बार बहुत दिनों में ख़्याल आया कि औरतें अपने पास-पड़ोसियों से मिलने जाती हैं, बाज़ार-दूकानों पर जाती हैं, यह इन्दु ऐसी घर-घुसनी है कि जब देखो यहीं जमी रहती है। न किसी से मिलना न जुलना। साथ ही कहीं चले गये तो भले ही चले जायें, वरना कॉलेज से सीधे घर···अकारण ही झुँझलाहट होने लगी और शीशे का एकाध गिलास ज़मीन पर दे मारने को मन करने लगा···

आज रात को भी उसी लड़खड़ाती हालत में आयेगा क्या ? कल रात की बात मैंने न इन्दु को बतायी थी न सुरजीत से ज़िक्र किया। सुबह चाय पीते समय वह ब्रश-तौलिया लिए निकली थी और हम लोग औपचारिकता से थोड़ा-सा मुस्कराये थे। उनकी चाय भीतर ही गयी थी। बादल जब चाय लेकर जा रहा था तो इन्दु ने सुनाकर कहा था, "प्याले थोड़ी देर बाद ख़ुद ही उठा लाना, वरना कल की तरह शाम तक पड़े रहेंगे भिनभिनाते हुए···।" सारे दिन पड़ा-पड़ा, चादर ओढ़े यह क्या सोचता रहता है छत ताकता हुआ ? मन कैसे लगता है ? इन लोगों का आख़िर

प्रोग्राम क्या है ? घर या दफ़्तर में हर जगह मेरे मन पर हमेशा एक तनाव और बोझ-सा बना रहता है। लगता रहता है, जिन्दगी की छोटी से छोटी और महत्त्वपूर्ण बातें मैं लगातार उनके जाने तक के लिए स्थगित करता चला जा रहा हूँ। सुबह उठते ही लगता है कि मेरा दिन मेरा अपना नहीं है। बगल के कमरे में हमेशा लेटे एक अहदी और आलसी के पड़े रहने से एक अजीब-सी चिनचिनाहट छूटती रहती है जैसे आप किसी को ट्रेन पर बैठाने जायें और ट्रेन अनिश्चित काल के लिए लेट होती चली जाये —दिमाग़ी ऊब का एक नस-तोड़ माहौल···।

इन्दु का सारा धैर्य जवाब दे चुका था, "मुझे नहीं लगता कि इनका कोई भी प्रोग्राम है···न कुछ करता है, न किसी को करने देता है···अब ओझा-सयानों के चक्कर में वक्त बरबाद कर रहा है। दोनों सारे दिन बस पड़े रहते हैं···हमारी तो अपनी जिन्दगी ही ख़त्म हो गयी···मैं कुछ कह-कहा दूँगी तो आप नाराज़ होंगे कि मेरे दोस्त को यों बोल दिया···।" मैं भी तो यही सब, ठीक इसी तरह सोच रहा था, लेकिन उसके मुँह से सुनकर बड़ी झुँझलाहट हुई— ऐसी भी क्या धरती फटी जा रही है कि दो दिन चुप नहीं रहा जा सकता ? भई, कोई न कोई इन्तज़ाम कर लेंगे तो चले जायेंगे। खुद भी न सोचते हों, ऐसा तो नहीं है। मुझसे तो सड़क पर निकाल कर नहीं फेंका जाता। दो दिन किसी को रखना हम लोगों के लिए इतना भारी पड़ जाता है ? मान लो, मेरा या इन्दु का भाई ही होता तो ? नौकरी या पढ़ाई के लिए न जाने कितने घरों में इस तरह भाई लोग आकर रहते ही हैं। लेकिन शायद वे इस तरह चिरन्तन और होलटाइम मेहमान नहीं बने रहते, घर के कामों में हिस्सा भी बँटाते हैं। यहाँ तो एक पान लाने का सहारा नहीं है। कुछ लोग कितने बुरे मेहमान होते हैं, इस बात का ज्ञान मुझे पहली बार हो रहा था। शायद अपने मन को यही सोचकर समझा लेते होंगे कि किसी के यहाँ पन्द्रह-बीस दिन रह-कर मेहमानदारी करा ली तो क्या हो गया ? दोस्त था और यह उसका कर्त्तव्य था। किसी ने कहा था कि ये लोग दैवी वी० पी० से आते हैं और उनका पूरा भुगतान करके छुड़ाना आपका कर्त्तव्य हो जाता है, उनकी आवश्यकताएँ और व्यसन सभी आपको निभाने पड़ते हैं, आप इस स्थिति

में हों या न हों। उस समय तो यह और भी यंत्रणादायक हो जाता है जब आप भी जानते हैं कि मेहमान साहब सरकारी या अपनी कम्पनी के काम से आये हैं और होटल-टैक्सी, खाने-मनोरंजन सभी के लिए खर्चा ले रहे हैं, लेकिन वे हैं कि आपसे ही दोस्ती की वी० पी० छुड़वाये जा रहे हैं, आपकी जेब के बल पर अच्छे-से-अच्छे होटल में खाने और कीमती सीटों वाले सिनेमा-थियेटर जाने का प्रस्ताव कर रहे हैं। आपको और आपकी बीबी को छुट्टी ले लेने पर मजबूर करते हैं, "मुझे तो चीजों की कोई समझ ही नहीं है।" का नारा देकर शॉपिंग कराने ले जाते हैं और अपनी बीवी के लिए एक-दो कीमती साड़ी, बच्चों के लिए कपड़े-खिलौने का एक बण्डल आपको, एक भाभीजी को और एक खुद उठाये खुश-खुश लौटते हुए फरमाते हैं, "भाभीजी, ऐसा कीजिए, रास्ते के लिए थोड़ी पूरियाँ-सब्जी बनवा दीजिए" और जब आप उनके कुली को पैसा देकर, "कभी उधर भी आइये" का निमंत्रण पीते हुए टा-टा करके लौटते हैं तो कैसी कृतार्थ अनुभूति से मन विभोर रहता है···लगता है इस बीच एक टैक्सी बेकार खड़ी रही है जिसका मीटर आपके सिर पर चढ़ता रहा है। बस में बैठकर हिसाब लगता है कि अब महीने के बाकी दिनों की स्थिति क्या रह गयी है···।

शाम को चाय पीते हुए फिर वही अकारण झल्लाहट और बाहर भागने की इच्छा का दबाव बेचैन करने लगा। सलवार-कमीज़ पहने सुरजीत भी आज घर पर ही थी। उससे भी कह दिया, "चलो, तुम भी चलो न, यहाँ बैठी-बैठी क्या करोगी?"

"नहीं, नहीं! आप हो आइए···मैं एकाध पत्र लिखूँगी।" लेकिन वह बिल्कुल झूठ बोल रही थी। वह या तो हमें मुक्त रखने के लिए, या तारक की राह देखने के लिए पीछे रहना चाहती थी।

मैं नहीं जानता कि इन्दु की हमेशा बनी रहने वाली खिन्नता का कारण यह 'ज्ञान' ही तो नहीं था कि सुरजीत कहीं मुझे अच्छी लगती है। लेकिन जानते हुए भी कि उसे मेरा इस तरह का खुला व्यवहार बिल्कुल भी पसन्द नहीं है, लापरवाही से सुरजीत के कन्धे को पहली बार छूकर धकेलते हुए-से कहा, "चलो यार, यह खत-वत फिर लिख लेना।

डेढ़-दो घण्टे में लौट आयेंगे। अगर पीछे तारक लौट भी आया तो ज़रा राह देख लेगा। आज उसे भी तो महसूस करने दो कि अकेले बैठकर राह देखना कैसा लगता है।" स्लीवलैस कमीज़ से निकली सुडौल सुन्दर बाँह वाले कन्धे को छूकर मैं झनझना आया।

बेमन से इन्दु ने भी दुहराया, "चलो, चलो, यहाँ बैठी-बैठी बोर ही तो होती रहोगी।"

"कुछ सिलाई करती···" कहकर सुरजीत सलवार-कुर्ता बदल कर साड़ी पहन आयी। इन कपड़ों में वह ज़रा ज़्यादा गंभीर और गरिमामयी लगती थी। निकले तो खुशबुओं का भीना-भीना बादल साथ था। गरिया-हाट पर यह असंभव था कि बगल से गुज़रने वाला एक बार मुड़कर उसकी ओर न देखे। मैंने जान-बूझकर आज उनके बारे में कुछ भी नहीं पूछा था, हालाँकि बादल और इन्दु दोनों ने बता दिया था— आज भी लड़ाई हुई है। बहुत दिनों से कौंधकर सहसा गायब हो जाने वाली बात सुरजीत के बेबाक सुडौल और स्वस्थ शरीर को देखकर पहली बार एक विचित्र आकार लेने लगी। कहीं इन लड़ाइयों के पीछे कोई और गहरा, अधिक आधार-भूत भेद तो नहीं है?

लेक के मुखर एकान्त में बैठ कर मूड़ी खाते हुए सुरजीत ने ही बताया, "डैडी का ख़त आज भी आया है···"

कुछ देर चुप रह कर मैंने जान-बूझकर अनजाना और उदासीन स्वर में पूछा, "अच्छा, क्या लिखा है?" कुहरिल अँधेरा लेक पर झूल आया था और रोशनियाँ पानी में थोड़ी ही दूर जाकर खो गयी थीं। वही उमस और घुटन थी, गला-बाँहें पसीने से चिपचिपा रहे थे फिर भी सामने वाले किनारे के पेड़ ऐसे लगते थे जैसे हम किसी पहाड़ी घाटी के किनारे बैठे हों और सामने खूब बादल घिर आये हों।

"···वही कि तुम आ जाओ···किसी भी तरह की कोई परेशानी उठाने की कोई ज़रूरत नहीं है। कोई भी कठिनाई हो तो टिवोली-पार्क जाकर मि० घई से मिल लेना···मैंने उन्हें लिख दिया है, वे पूरी मदद करेंगे। रहा वो, तो उस बदमाश को मज़ा न चखा दिया तो मेरा नाम नहीं ···उसे और उसके मददगारों को कोर्ट में ले जाकर खड़ा करूँगा···। मैं

आज दोपहर को मि० घई से मिलने टॉलीगंज गयी थी। डैडी के साथ ही लाहौर में पढ़े थे, बुजुर्ग आदमी हैं; बिल्कुल बेटी की तरह मान कर मिले। कहने लगे, जो भी मदद हो वह करने को तैयार हैं···कहते थे कि कोई भी असुविधा हो तो यहाँ आकर रहने लगो···लेकिन तारक का मुँह देखने को वह भी तैयार नहीं हैं···।"

"तारक का क्या ख़याल है ?" मैंने टोह लेने को पूछा।

"उन्होंने ही भेजा था। मुझे तो यों हरेक के पास आना-जाना पसन्द नहीं है। ठीक है, कभी डैडी के दोस्त रहे होंगे, लेकिन उनके पास जाना ऐसा नहीं लगता भाई साहब, जैसे डैडी से माफी माँगने जा रहे हों ? मैं कहती हूँ कि ऐसा ही है तो दिल्ली चले-चलते हैं और सीधे जाकर डैडी से ही माफी माँगे लेते हैं। यों हरेक के सामने ज़लील होने से क्या फ़ायदा···?" वह आधे रुँआसे स्वर में कहती रही—"मुझे तो बस, इनका ही ख़याल आता है। ही फ़ील्स सो लोनली एण्ड डिजैक्टैड···अगर मैं चली गयी तो हुगली में डूब मरेंगे···और यह मैं भी जानती हूँ कि दिल्ली जा-कर एक बार अगर मैं डैडी के हाथ पड़ गई तो इनका पता नहीं चलेगा···।"

मैंने उसकी आधी बात बिना सुने, पहली का जवाब बड़े अनमने और तटस्थ भाव से दिया, "सुरजीत, अब मुझे भी लगता है कि यही सबसे अच्छा तरीका है। जाकर डैडी से ही माफ़ी माँग लो और इन सारी मुसीबतों से छुटकारा पा लो। यों दर-दर भटक कर क्यों अपनी मिट्टी ख़राब करती हो।"

"मैंने तो हार कर यह भी कह दिया कि दिल्ली ही चले चलते हैं, सो इसके लिए भी तैयार नहीं हैं। जानते हैं न, उनके सामने ये किसी भी हालत में नहीं पड़ेंगे, जाना मुझे ही होगा। और तब जो होगा सो मुझे अभी से पता है। हाथ-पैर नहीं तुड़वायें, तो कोई-न-कोई बखेड़ा खड़ा करके इन्हें जेल ज़रूर ही करा देंगे। अभी तक जो चुप हैं सो केवल मेरी ही वजह से। किसी भी झूठे-सच्चे बहाने से दिल्ली में मार-पीट में कितनी देर लगती है···?"

"लेकिन, सुरजीत, सच, मेरी समझ में बिल्कुल नहीं आता कि इस

तारक की योजना क्या है ?" मैंने एक-एक शब्द चबा कर पूछा ।

स्पष्ट खीझ से सुरजीत ने मुँह बिचका दिया, "योजना क्या होगी··· सारे दिन पड़े रहते हैं, कभी कहते हैं, सिर दर्द है, हाथ दबा, सिर दबा। पता नहीं कहाँ-कहाँ की उल्टी-सीधी बातें सोचते हैं। रात को बीस बार उठकर बाहर झाँकते हैं कि सड़क पर कोई खड़ा तो नहीं है। कल चौंककर जाग गये, मुझे जगाकर बोले, बाहर सीढ़ी में कोई खड़ा है, भीतर की सिटकिनी और डण्डा लगा है न। कभी कहेंगे, बालकनी में कोई चढ़ आया है। मैं देखने जाने लगती हूँ तो मुझे पकड़कर पास बैठा लेते हैं, नहीं तू मत जा, तुझे पकड़ ले जायेगा। दो हुए तो चीखने भी नहीं देंगे। तीन-चार रातों से बिल्कुल भी नहीं सोये हैं। पता नहीं क्या-क्या बुदबुदाया करते हैं। एक और नया नशा चढ़ा है कि लगातार मंत्र पढ़ने से सारी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। जरा-जरा देर बाद झटके से जागेंगे, जरा आँख लगी तो बड़ी डरावनी-डरावनी आवाज़ें मुँह से निकालेंगे। परसों तो मैं चीख कर आपको जगाने लगी थी। घर्र-घर्र जैसी जाने कैसी आवाज निकालने लगे गले से, उठे तो आँखें ऐसी फटी हुईं कि बाहर ही टपक पड़ेंगी। साँस ही न ली जाये···बड़ी मुश्किल से किसी तरह बोले, 'अभी कोई मेरा गला दाब रहा था···ऐसा लगता था जैसे मेरे टेंटुए को छूता हुआ छुरा सामने ठहर गया है। आदमी नहीं दीखता बस, कभी मुट्ठी में रुका छुरा कौंधता है।' पानी-वानी पिलाया तो कुछ ठीक हुए। रात-भर मुझे समझाते रहे कि तुम अब एकदम निकलना बन्द कर दो, बाहर बाल्कनी की तरफ भी मत जाओ, बस यहीं मेरे सामने बैठी रहो। मुझे डर लगता रहता है कि कोई तुझे मुझसे छीन ले जायेगा। फिर पास बैठती हूँ तो गन्दी-गन्दी गालियाँ देते हैं, लड़ते हैं, झल्लाकर हाथ-पैर छोड़ते हैं कि तुम्हारे डैडी की वजह से मेरी अच्छी-खासी जिन्दगी का सत्यानाश हो गया···आज किसी लायक नहीं रह गया हूँ। न बनारस जा सकता हूँ, न दिल्ली। कलकत्ते में जो हालत है सो देख ही रही हो···किसी दिन या तो तेरी गर्दन घोंट दूँगा या खुद हुगली में छलाँग लगा लूँगा। सारी दुनिया तेरे कारण मेरी दुश्मन हो गयी है। दो दिनों पहले कह रहे थे कि चुपचाप कहीं पहाड़ी जगह भाग चलें···।"

बिना कुछ भी बोले, हम दोनों सुनते रहे—एक निराकार दया और वितृष्णा से अभिभूत। मैं कल्पना कर रहा था कि सुरजीत कितनी भीतरी तकलीफ से तारक के बारे में यह सब बता रही होगी···कहीं यह लड़की गहराई में उसे प्यार भी तो बहुत करती है ! लेकिन यह प्यार है या एक स्थिति की मजबूरी को ढोये जाने का अभिशाप ? मैंने अफसोस-बुझे लहजे में कहा, "भागने की बात तो यह है कि यहाँ भी अगर तुम लोग खुद ही अपने डैडी को न लिखते तो पता लगाते-लगाते भी उन्हें दो-एक महीने लग ही जाते···ठाठ से कहीं कुछ करते और रहते। पहाड़ी जगह जाकर भी अगर यही सब किया तो वहाँ से कहाँ भागोगे ?"

"सच भाई साहब, मेरा दिमाग़ तो काठ हो गया है। कुछ समझ में ही नहीं आता। इतनी ज्यादा डिसगस्टैड हो गयी हूँ कि डर लगता है कहीं कुछ कर न डालूँ···ऐसी ढुल-मुल स्थिति में रहने की आदत नहीं है। डैडी लाख अपने सही, लेकिन एक नाक लेकर उनके यहाँ से आयी थी। आज खुद आगे होकर उन्हें लिखना कितना अपमान-जनक है, मैं ही जानती हूँ। अब आज इस घई के पास, कल उस लूथरा के पास···।" आगे रुलाई में उसका स्वर रुँध गया।

कुछ देर कोई कुछ नहीं बोला और सुरजीत सुबकती रही, अपने पर नियंत्रण करने का प्रयत्न करती-सी। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि मन में इतने दिनों से जो कुछ घुमड़ रहा है, वह सब कह डालना चाहिए या नहीं। आज सुरजीत कहीं क्षुब्ध है, कल को यही बात मेरे खिलाफ़ भी जा सकती है। फिर भी सोच-सोचकर धीरे-धीरे कहा, "देखो सुरजीत, मुझे नहीं मालूम कि मुझे यह सब कहना चाहिए या नहीं। शायद नहीं कहना चाहिए। कल को तुम लोग फिर एक हो जाओगे और तब ये सारी बातें जिस तरह से कहीं जायेंगी, उसका थोड़ा-बहुत अन्दाजा मैं कर सकता हूँ। क्योंकि तब सारे किये का कोई महत्त्व नहीं रहता। वह सब तो धो-पोंछ डाला जाता है, बस, किसी एक व्यवहार या वाक्य को लेकर बार-बार गदा की तरह घुमाया जाता है और जिन्दगी-भर की दुश्मनी पाल ली जाती है कि उस समय इन्होंने हमारे साथ ऐसा किया था। फिर भी मैं कहूँगा, क्योंकि जाने क्यों मैं शुरू से इसमें अपने को इन्वॉल्व्ड महसूस करने लगा

हूँ। तुम लोगों को लगता हो या न लगता हो, लेकिन तुम्हारी सारी स्थिति को लेकर मेरे मन में बड़ा बोझ है, और हम लोग अकसर इसी बारे में बातें किया करते हैं। मैंने इस पर बहुत सोचा है। देखो, बुरा मत मानना, सब कुछ समझते हुए ही मैं अपना मन खोल रहा हूँ। मैं तारक को अच्छी तरह नहीं जानता। वह मेरा दोस्त है, यह कहना भी ग़लत होगा। हम लोग महीना-पन्द्रह दिनों दो भले आदमियों की तरह मिलते रहे हैं, दूर-दूर की जान-पहचान ही इसे कह सकते हैं। मुझे यह व्यक्ति अच्छा लगा था। लेकिन पास से और एक खास स्थिति में देखने का मौक़ा अभी ही मिला है। सही कहूँ, तो यह बहुत अच्छा तजुर्बा नहीं है। कुछ लोग किसी क्षणिक आवेश या किसी शेखी में आकर प्यार का धनुष उठा लेते हैं, मगर फिर उसका बोझ उनसे सहा नहीं जाता और नसें चटखने लगती हैं, गुर्दा जवाब देने लगता है। मैं दिल से चाहता हूँ कि मेरी बात एकदम ग़लत और झूठी ही साबित हो, लेकिन इस आदमी के साथ तुम्हारी जिन्दगी चलेगी नहीं, मुझे यह साफ़ लगने लगा है। अभी से जो लक्षण दीखने लगे हैं वे बहुत उत्साह-जनक नहीं हैं। यह तुम लोगों की शुरुआत है?···तुम अच्छे घर की हो, पढ़ी-लिखी, समझदार और कल्चर्ड लड़की हो, इसलिए तुमसे हमदर्दी होती है; वरना इस आदमी को तो शायद दो दिन बर्दाश्त करना आसान नहीं है। बुनियादी तौर पर यह आदमी कमज़ोर, कायर, बेईमान और झूठा है···।" अँधेरे में शायद इन्दु ने मेरी कुहनी पर हाथ लगाया। कहीं और कोई सख्त बात न कह जाऊँ, इसलिए बीच में ही बात तोड़ कर चुप हो गया। उसका झूमते हुए आना, कीचड़-भरी आँखें, छल्ले-दार काँच और साँप की याद दिलाता कछुए जैसा थूथन, बार-बार चश्मा पीछे ठेलना, क्षण-भर को कौंध कर गायब हो गये। मैंने फिर अपनी बात सँभाली, "मुझे मालूम है, जिसे हम दिल के भीतर से प्यार करते हैं, और तुम सचमुच उसे प्यार करती हो, उसके बारे में यह सब सुनना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता, लेकिन मैं क्या करूँ, तुम्हें और तुम्हारा भविष्य देखकर मुझसे रहा नहीं जाता···।"

कहीं इस सबके पीछे उससे चिढ़ जाने, छुटकारा पाने की उतावली ही तो नहीं है? मैंने अपने से सवाल किया।

उस क्षण मुझे लगा, अजब पहेली है कि एक क्षण लगता है, जैसे आप भीतर तक बहुत ही अधिक उलझे हैं, इन्वॉल्व्ड हैं और दूसरे पल महसूस होता है जैसे निकालकर झटके से बाहर किनारे ला-खड़े कर दिये गये हैं···दुबारा मात्र दर्शक हो गये हैं।

सुरजीत सुनती हुई कुछ सोचती रही, सुबकना ठण्डा हो गया था, कभी-कभी उँगलियों से आँसू पोंछ लेती थी बस। हल्की-सी शिकायत से बोली, "उन्हें लगता है कि इधर आप भी उनसे खिंचे रहते हैं। इसका वह अपना मतलब लगाते हैं। भाई-साहब और भाभीजी को यह पसन्द नहीं है कि मैं शादी-शुदा और तीन-बच्चों का बाप होकर तुम्हें यों ले आया हूँ। इसलिए वे मेरी कोई मदद नहीं करना चाहते···।"

भीतर से तिलमिलाते हुए भी मैं नकली ढंग से हँस पड़ा। "मैं जानता था कि वह यही सोच रहा होगा। यह भी जानता हूँ कि इस वक्त उस बेचारे को खुद भी नहीं मालूम कि वह क्या सोचता है, क्या करता है। पता नहीं, तुम भी ऐसा ही सोचती हो क्या? लेकिन यह तुम भी जानती हो सुरजीत, पसन्द और नापसन्दगी की बात होती तो क्या मैं इतने दिनों उसे छिपाये रखता? सारी दुनिया को पता है कि तुम लोग मेरे साथ हो, तुम्हारे पत्र यहाँ आते हैं और क्या मैं इस बात को नहीं जानता कि इसी बात को लेकर कल को मैं फँस सकता हूँ? लेकिन इस समस्या को लेकर मेरे सोचने का तरीक़ा बिल्कुल दूसरा है। मैं बिल्कुल नहीं मानता कि विवाह आदमी की चरम-नियति है, वह आपके अनजाने किया गया हो या जान-बूझकर। वह एक ऐसी स्थिति-भर है जो आपको अगर सूट नहीं करती तो आप उसे तंग कपड़ों की तरह तहाकर वापस रख दें। परम्परा के नाम पर हो या स्वयं अपने चुनाव के नाम पर, अगर किसी भी स्थिति को सारे भविष्य की बलि चढ़ाकर ही निभाने की मजबूरी हो तो उसका मूल-उद्देश्य ही खत्म हो जाता है। अगर सचमुच ऐसी ही चूहेदानी है तब तो मानव-विकास के लिए इसे तोड़ डालना और भी जरूरी है। क्योंकि यों ही हर प्रतिभा और शक्ति विवाह को निभाने, दूसरे साथी से सम्बन्ध मधुराने और समझौते करने के नाम पर अन्धी गलियों में खोती चली जायेगी तो प्रगति कैसे होगी? मैं यह भी मानता हूँ कि सुखी गृहस्थ

ऐतिहासिक विकास का सबसे बड़ा बाधक होता है, क्योंकि कोई भी परि-वर्तन उसके सुख के लिए ही सबसे बड़ा खतरा बनकर आता है। बँधा हुआ ढर्रा ही उसके 'सुख' का सबसे बड़ा आश्वासन है। मुझे कभी आश्चर्य भी होता है कि अजीब घपला है कि हम सब अपने-अपने ढंग से सुखी होना चाहते हैं और सब मिलाकर, सुखी और निश्चित लोगों से कटुतम विरोध सहते हैं। शायद वहाँ आग्रह सुख-चैन पर इतना नहीं है जितना एक खास ढर्रे को स्वीकार-अस्वीकार करने का है। लोग कहते हैं कि दूसरे हमारे ढंग से सुखी हों…।"

"यह सारी फिलॉसफी अभी जरूरी है?" इन्दु ने बात काट कर पूछा।

मैं अपनी कमजोरी पर मुस्कराया। अनजाने ही शायद मैं उनकी बात के बहाने अपनी स्थिति का विश्लेषण करने लगा। शायद हम हमेशा दूसरों के बहाने अपनी ही बात कहते हैं, अपनी ही सफाई या विरोध जाहिर कर रहे होते हैं—ऊपर से समस्या दूसरों की होती है। जाने कितनी बार इस दौरान मैं अपनी और उन लोगों की समस्या का भेद भूल गया हूँ। लेकिन अभी भी अपनी बात पूरी किये बिना तार को छोड़ना नहीं चाहता था। बोला, "विश्लेषण नहीं कर रहा, एक बात समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। इन लोगों को शायद ग़लतफ़हमी हो गयी है। देखो सुरजीत, मैं बिल्कुल भी वैसा जड़-काठ नहीं हूँ कि प्यार या पसन्द जैसी किसी भी कमज़ोरी को हाथ झटक कर अस्वीकार कर दूँ कि यह सब भटकन और चरित्रहीनता है। दुनिया के सारे बड़े परिवर्तन इसी तरह की छोटी-छोटी निहायत अपनी समस्याओं से जूझते और अकेले पड़ गये व्यक्तियों ने किये हैं। सब जानते हैं कि इन बातों को लेकर कभी ट्रेड-यूनियनें नहीं बनेंगी, इन्हें तो व्यक्तिगत स्तर पर ही हल करना होगा। लेकिन प्यार की इस चुनौती को स्वीकार करने का कलेजा भी तो हो न…यह तो ऐसा ही हुआ कि जोश में आकर प्यार की कुप्पी का मुँह तो खोल दिया, लेकिन जब उसमें से निकलकर राक्षस सामने आ खड़ा हुआ तो हाथ-पाँव फूल गये, आँखें पथरा गयीं…।"

निश्चय ही इन्दु को बड़ी देर से मेरी ये सारी बातें बकवास लग रही

होंगी, तभी बहुत देर चुप नहीं रह सकी। बात काटकर बोली, "तारक की शिकायत है कि हम मदद नहीं करना चाहते। तुम बताओ, हमसे क्या मदद चाहते हैं वो ? नौकरी के लिए इन्होंने पहले बागड़ी से बातें कीं, कुछ दिनों पहले बताया था कि स्कूल में भी पक्का है, लेकिन जब देखते हैं कि किसी को इन सब में दिलचस्पी ही नहीं है तो कब तक कोई अपनी बात खराब किये जाये ? सुरजीत, तुम मुझसे लिखवा लो, न तो तारक खुद कुछ करेंगे और न दूसरे को करने देंगे और यों एक-दूसरे का चेहरा देखने से ज़िन्दगी चलती नहीं है। दो दिन बाद प्यार का मुलम्मा उतर जायेगा तो रोना बैठ के। 'मैं उसके बिना रह नहीं सकता' और 'मैं उसे आत्मा की गहराई से प्यार करता हूँ', यह सब बातें सुनने में बड़ी अच्छी लगती हैं, लेकिन जो आदमी इतना शक्की हो कि अपने दोस्तों पर विश्वास न कर सके, नौकरी करने को बाहर न निकलने दे, उसके साथ मैं तो एक दिन न रहूँ। इसका सीधा मतलब तो यह है कि उसे मूलतः मुझ पर ही विश्वास नहीं है कि पता नहीं कब किसके साथ फँस जाऊँ या भाग जाऊँ। वरना मैं कोई जानवर तो हूँ नहीं कि जिसने जिधर रस्सी खींची, उधर चल दी। मुझे तो ऐसे अविश्वासी आदमी का चेहरा देखकर झुँझलाहट चढ़ती है। तुम्हें बुरा लगेगा, लेकिन तुम्हारे तारक मेरी नर्व्ज़ पर आ गये हैं···वो तो पता नहीं क्यों, तुमसे इतना प्यार हो गया है और एकदम अपनी छोटी बहन लगने लगी हो, इसलिए इतनी चिन्ता और दुख भी होता है, वरना हमें क्या लेना-देना ? तुम्हारी ज़िन्दगी है, तुम जानो···तुम महीना भर मेरे यहाँ रहो, मेरे माथे पर शिकन नहीं आयेगी, लेकिन उस आदमी से मुझे चिढ़ हो गयी है···अरे इसी बूते पर भले घर की लड़की को लाये हो ? कितने दिनों तुम्हें और दूसरों को प्यार की गहराई और महानता के नाम पर बहकाये रखेंगे ?"

शायद काफी झिझक के बाद कहीं दूसरे किनारे से सुरजीत बोली, "भाभी, अब मैं कहीं लौट भी तो नहीं सकती। सच पूछो तो अब डैडी को मुँह दिखाने की हिम्मत ही नहीं रह गयी है।"

मैं हल्के से डर गया, क्या इस हद तक सोचने लगी है सुरजीत ?

"मैं तुम्हारी स्थिति सोच सकती हूँ सुरजीत ?" इन्दु ने उसकी कमर

में बाँह डालकर उसे अपने से सटा लिया, "लेकिन समझ-बूझ कर कितने दिनों यह सब चलता जायेगा ? क्यों नहीं तुम कह सकतीं कि तुम्हें नौकरी करनी है ? वह खुद कुछ सोचने-समझने की स्थिति में नहीं है तो तुम तो कुछ आगा-पीछा सोच सकती हो ? बच्ची तो नहीं हो कि अपना भविष्य ही न दिखाई दे···बिना माँ-बाप की चिन्ता के जब तुम इतना बड़ा कदम उठा सकती हो तो इतनी-सी बात नहीं दिखाई देती कि आगे क्या होगा···?"

उस क्षण उस अनाथ-सी लड़की के प्रति सहानुभूति से भर कर मैंने कहा, "सुरजीत, मैं और तो कुछ भी नहीं कह सकता, हाँ, कभी जरूरत हो तो मेरा घर तुम्हारे लिये हमेशा खुला है, बड़े भाई की तरह, इतना ही···" आगे मेरा स्वर रूँध गया और मैंने जल्दी से सिगरेट मुँह से लगाकर माचिस तलाश करनी शुरू कर दी।

जब हम लोग उठे तो मन में रुई के बादल भर आये थे। अनकहे ही एक नये रिश्ते का समझौता हो गया था आपस में और आत्मीयता की अदृश्यता एक बिन्दु पर बाँध गयी थी। लेकिन कहीं कोई गहराई ऐसी भी थी जहाँ एक और अहसास कुलबुला रहा था, उस आधी रात को, एकान्त और अँधेरे में मैंने जिस 'महान' और 'पवित्र' की क्षणिक झलक देखी थी जिसने मुझे आविष्ट कर दिया था—आज उसकी पीठ में छुरा मार कर यहाँ लेक में फेंके जा रहा हूँ। अपराध और पाप भी कोई अनाम चीज थी जो पैनी धार की तरह निश्शब्द चेतना में उतर गयी थी। मैं कहीं उससे 'बदला लेने' पर तो नहीं उतर आया हूँ ? तू तो किसी का कोई अहसान, विश्वास नहीं मानता न, ले अब मेरा वार सँभाल···। यह सारा सन्तोष और उत्फुल्लता इसीलिए तो नहीं है कि मैं कहीं उस महान को इसी स्तर पर उतरा हुआ देखना चाहता था ? यह बिल्कुल झूठ है कि महान और पवित्र मन को सन्तोष और सुख देता है। वह हमेशा हमारे लिए एक चुनौती बनकर आता है। या तो हम उसे ध्वस्त कर दें या अपने धरातल पर खींच लायें। इसलिए हम अपने निकटतम और अपनों में किसी महान को सह नहीं पाते, और बदले में या तो उस महान को ही कुचल देना चाहते हैं या 'अपनेपन' के उस सम्बन्ध को ही। किसने कहा

था, हम अपने निकटतम को ही सबसे गिरा और विपिन्न देखना चाहते हैं ताकि उससे बड़े होने का सुख पा सकें।

नहीं, मैंने मन को समझा लिया, मैंने जो कुछ भी किया है वह सुरजीत के हित से प्रेरित होकर किया है…।

तीसरे दिन। मैं और घई नौ नम्बर के प्लेटफार्म पर खड़े थे और थर्ड-क्लास के स्लीपर की खिड़की से सुरजीत का चेहरा झाँक रहा था। डिब्बे के दूसरी तरफ़ वाली खिड़की से लगा तारक बैठा था और उसके सामने एक मालगाड़ी का डिब्बा दीवार की तरह खड़ा था। मि० घई ने उन्हें संतरे लाकर दिये थे। बोलने को जैसे किसी के पास कुछ भी नहीं रह गया था; बस अनकही प्रतीक्षा थी कि बत्ती हरी हो और गाड़ी खुले… तारक इस तरह तटस्थ और निर्विकार बैठा सिगरेट पी रहा था जैसे उसे किसी से कोई मतलब ही न हो…चेहरे पर कोई तनाव भी नहीं था…जैसे मेरी बैठक में ही लेटा कुछ सोच रहा हो…प्लेटफार्म की भाग-दौड़, शोर-शराबा, ऊपर के एनाउन्समेन्ट और नीचे की विदाइयाँ, पुकारें…मुझे लगा जैसे मैं दोपहर के सन्नाटे में किसी जंगल में खड़ा हूँ…दोनों कल नौ बजे तक दिल्ली पहुँच जायेंगे।

ऑफिस से निकलते-निकलते गोयल का फोन आया था। घबराये स्वर में कहा था, "हम आपस में मिले नहीं हैं, लेकिन आपके बारे में इतनी बातें हुई हैं कि मिले-से ही लगते हैं। सुना है, आज तारक और सुरजीत दिल्ली जा रहे हैं। हफ्ते-भर से वे मुझसे मिले नहीं हैं।…भगवान के लिए, आप कम-से-कम उसे किसी भी तरह दिल्ली मत जाने दीजिये…जैसे भी हो, रोक लीजिए। उसे कोई अन्दाजा नहीं है कि वह कहाँ जा रहा है और सरदार

कितना जाहिल और ज़ालिम आदमी है। तारक के कहने पर मैंने अपने एक दोस्त को दिल्ली लिखा था कि वह सरदार से मिल आये। उसने खबर दी कि सरदार ने कृपाण दिखाकर कहा है, 'इसे मैं रोज इसीलिए एक बार घिस लेता हूँ कि उसकी एक-एक बोटी काटनी है। ज्यादा से ज्यादा फाँसी ही तो हो जायेगी सो मैंने उसका इन्तज़ाम कर लिया है, वसीयत लिखवा दी है। अब यही समझ लूँगा कि पाकिस्तान में एक और को मारते हुए ही मारा गया।' उसी दोस्त ने मुझे बताया है कि तारक से कह दूँ, एकदम बाहर न निकले, सरदार ने एक आदमी कलकत्ते भेजा है। मैं पूछता हूँ, अब यह खुद कम्बख्त वहाँ मरने क्यों जा रहा है? उसे रोक लीजिये मिस्टर···।" गोयल की आवाज़ सचमुच टूट-टूटकर निकल रही थी। मैं फोन छोड़कर बाहर निकल आया।

सड़कों पर ऑफिसों से लौटने वालों की भीड़ थी। बसों और ट्रामों में लोग बन्दरों की तरह लटके थे। जिस टैक्सी की ओर भागता, पता नहीं कहाँ से कोई प्रकट होकर उसमें जा घुसता। बड़ी भाग-दौड़ के बावजूद साढ़े छः से पहले टैक्सी मिली ही नहीं। घर आया तो बादल ने बताया कि वे तो छः बजे ही चले गये और बीवी जी के कॉलेज में कोई फंक्शन है वे नौ तक लौटेंगी। मैं एक गिलास पानी पीकर उलटे पाँव लौट आया। बैठक खाली केंचुल की तरह सूनी और भयावनी लगी थी, यह मैंने टैक्सी में बैठे-बैठे सोचा था। बादल ने ही बताया था कि एक सूट-बूट वाले नाटे-से साहब टिकट लेकर आये थे और वे ही अपने साथ लिवा ले गये हैं। ज़रूर घई ही था। हावड़ा-ब्रिज पर फिर भीषण ट्रैफिक था और लकवा मारे अंग की तरह बसें-कारें चीख-चीख कर फड़फड़ा उठती थीं। पता नहीं, हिन्दुस्तान में हैलीकॉप्टरनुमा गाड़ियाँ कब बनेंगी कि ऐसे मौकों पर उड़-कर सीधे प्लेटफार्म पर ही उतर जायें। फिर प्लेटफार्म टिकट की लाइन ···जैसे-तैसे जब भीतर पहुँचा तो सात-बीस हो गये थे।

सुरजीत खिड़की से झाँक रही थी। शायद उसे उम्मीद थी कि मैं आऊँगा। सफेद बालों की झीनी झालर और बीच में गंजी चाँद वाले एक सज्जन से उसने मेरा परिचय कराया था, "मि० घई, डैडी के दोस्त हैं बचपन के···।" मि० घई पुराने लोगों की तरह भीतरी जाकेट वाला

थ्री-पीस सूट पहने थे, ठोड़ी उनकी उठी हुई टाई की नॉट को छू जाती थी और कंधों पर इधर-उधर गेलिस की डोरियाँ दीख रही थीं। कुछ वही खिलौने वाली तस्वीर थी जिसे देख कर हम बचपन में कहते थे 'पिल-पिली साहब'···बड़े रिजर्व्ड से आदमी थे जैसे ज़िन्दगी-भर किसी ऊँची कुर्सी के मालिक रहे हों ···न जाने क्यों मन में आया, चर्चिल इनका ज़रूर आदर्श-पुरुष रहा होगा···

मैंने खोजने वाली निगाहों से भीतर देखते हुए पूछा, "तारक कहाँ है ?" वह दूसरी ओर बैठा, सामने खड़े डिब्बे पर खड़िया से खींचे गये बड़े से 'कट्टम' (क्रॉस) के निशान को देख रहा था, या शायद उसका मुँह ही उधर था और वह देख किधर भी नहीं रहा था। बीच-बीच में चश्मा सरका लेता था।

भीड़ और कुलियों से उलझता-झगड़ता मैं बड़ी कठिनाई से स्लीपर का सँकरा पैसेज पार करके उस तक पहुँचा। सामने वाले साहब से माफी माँगते हुए, एकदम उसके सामने बैठकर दबी आवाज में कहा, "तारक, यह क्या बेवकूफी है ? पागल हो क्या ?" शायद मैं उसे चार दिनों बाद देख रहा था।

वह कहीं ऊँचाई से मुस्कराता हुआ बड़ी सूनी आँखें मेरी तरफ फाड़े रहा। मुझे लगा, बात उसके कानों तक पहुँच ज़रूर गयी है, लेकिन दिमाग़ से जुड़ नहीं पायी है। एकदम भाव-हीन ढंग से मुझे घूरता हुआ महीनों के न सोये और बीमार आदमी का चेहरा मुखौटा की तरह मेरे सामने था। मुझे इस तरह की चिनचिनाहट छूट रही थी कि इसे दोनों कन्धों से पकड़ कर बुरी तरह झंझोड़ डालूँ और ठोकर मारता हुआ बाहर खींच कर प्लेटफार्म पर डाल दूँ। पता नहीं, कहाँ से वह बोला, "तुम लोगों को बहुत तकलीफ दी···।" उसने फिर चश्मा उँगली से पीछे ठेला।

"तकलीफ की ऐसी कम तैसी···" मैं झल्ला पड़ा, न चाहते हुए भी एक अश्लील गाली निकल ही गयी, "तुम जा कहाँ रहे हो···?"

"दिल्ली···।" स्वर ऐसा सहज सपाट और ठण्डा था जैसे कहा हो, "चौरंगी।"

मैंने उसके दोनों हाथ पकड़ लिये, खुशामद से कहा, "तारक, तुम अभी

भी गाड़ी से नीचे उतर आओ। सुरजीत को चला जाने दो···उतरो।" दुगुनी बेचैनी इस बात की थी कि घई मुझे लगातार देख रहा था। गोयल भी नहीं आया, वह आ गया होता तो साले को दोनों तरफ से पकड़कर नीचे उतार लेते, फिर जो होता देखा जाता।

उसने सख्ती से हाथ छुड़ा लिये। लापरवाही से पूछा, "एक सिगरेट नहीं पिलाओगे···?"

मैंने डिब्बी उसके हाथों में कागज की खाली पुड़िया की तरह ठूँस दी, "यह सिगरेट ज़िन्दगी भर पीते रहना, पहले बाहर आओ और मेरी बात सुनो···।" गाड़ी की सीटी ने मेरी बात को चीर दिया।

उसने बुजुर्गों की तरह मेरी पीठ पर हाथ रख कर धक्का देते हुए कहा, "तुम उतर जाओ, गाड़ी चलेगी···"

गाड़ी से उतरते हुए निष्फल क्रोध और झुँझलाहट से मैंने सोचा, साला या तो पिये हुए है या पागल हो गया है। इतने पास से बातें कर रहा था, ध्यान ही नहीं रहा कि साँस की गंध कैसी थी? हो सकता है सुरजीत ने सारी बातें कह डाली हों और यह बहुत ही नाराज़···

"लिखोगी?" मैंने सुरजीत से इतना ही पूछा।

"देखिए···" उसके लहजे से मुझे लगा कि यह कम्बख्त घई न होता तो हम लोग कम-से-कम खुल कर लड़ते, रोते, हँसते, और एक-दूसरे को खरी-खोटी सुनाते···एक सरदार को डिब्बे में चढ़ते देख कर ख़याल आया कि अगर घई ने टिकट कटाये हैं तो ज़रूर ही सुरजीत के डैडी के किसी आदमी को भी साथ ही भेज रहा होगा, ताकि कहीं बीच में न गायब हो जायें।

बत्ती पीली से हरी हुई, सीटियाँ बजीं, लालटेनें हिलीं और सिर के ऊपर झण्डी हिलाता गार्ड सामान वाले डिब्बे की चाबी लिये अपने कूपे की तरफ तेजी से बढ़ा···शायद आँसू-भरी आखों से सुरजीत इधर देख कर मुस्कराती रही और तारक दूसरी तरफ़ ही अँधेरे में देखता रहा—कत्थई दीवार पर सफेद क्रास की लाइनें उसके सिर के इधर-उधर निकली थीं, टेंटुआ कई बार ऊपर-नीचे गया, सुरजीत ने फँसे गले से कहा, "इन्दु भाभी को नमस्कार कहिए···उनसे मिलना नहीं हुआ।"

धीरे-धीरे गाड़ी खिसक कर तेज़ होती गयी, क्या अब भी भाग कर उसे घसीटते हुए बाहर निकाल कर लाया जा सकता है ? अटैची-बिस्तर कुली पर लदवाये, भागती-हाँफती एक महिला हताश होकर खड़ी हो गयी और हसरत-भरी फटी आँखों से हर डिब्बे को सामने से गुज़रते देखती रही···गाड़ी छूट गयी थी···

मैं और घई बिना आपस में एक भी शब्द बोले जब कदम नापते-से लौटे तो इस तरह दूर-दूर और कटे-कटे चल रहे थे जैसे श्मशान से लौटने वाले अचानक ही आपस में अपरिचित हो उठते हैं···रह-रह कर मुझे ऐसा लगता था, जैसे इन्दु भी मेरे साथ ही चल रही है और एक भूला हुआ तनाव फिर हम लोगों के बीच सजीव हो आया है और यह अब अहसास हमेशा बना रहेगा कि कोई चीज हम लोगों के बीच निरन्तर लहरें लेती सरक रही है। समझ नहीं आता था कि कैसे उसके सामने पड़ूँगा···हमें जोड़ने वाला कोई सूत्र सहसा ही अनुपस्थित हो गया है···और हम फिर वापस लौट आये।

साँप-सी बल खाती पटरियों की चमक को देखकर मैं सोचने लगा था, तारक के चेहरे पर मैंने ऐसा क्या देखा था जो किसी बहुत परिचित स्थिति की याद दिलाता था···

२४-३-'६६
शक्तिनगर,
नई दिल्ली